16 वर्ष (2006-2021)

अध्यायवार मुख्य परीक्षा हल प्रश्न-पत्र

भूगोल

प्रश्नोत्तर रूप में

सिविल सेवा परीक्षा के लिए

संघ एवं राज्य लोक सेवा आयोग तथा अन्य समकक्ष प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए समान रूप से उपयोगी

संपादकः एन. एन. ओझा
(सिविल सेवा परीक्षाओं के मार्गदर्शन में 30 से अधिक वर्षों का अनुभव)
लेखन एवं प्रस्तुतिः क्रॉनिकल संपादकीय समूह

CHRONICLE
Nurturing Talent Since 1990

भूगोल प्रश्नोत्तर रूप में

बुक कोडः 247

संस्करण 2022

मूल्यः ₹ 390/-

ISBN : 978-81-956502-9-3

प्रकाशक

क्रॉनिकल पब्लिकेशंस प्रा. लि.

कॉरपोरेट ऑफिसः

ए-27डी, सेक्टर-16, नोएडा-201301,
फोन नं: 0120-2514610-12,
E-mail : info@chronicleindia.in

संपर्क सूत्रः

संपादकीय : 9582948817, editor@chronicleindia.in
ऑनलाइन सेल सहयोगः 9582219047, onlinesale@chronicleindia.in
तकनीकी सहयोग : 9953007634, Email Id: it@chronicleindia.in
विज्ञापन : 9953007627, 9891601320, advt@chronicleindia.in
सदस्यता : 9953007629, 9953007628, Subscription@chronicleindia.in
प्रिंट संस्करण सेल : 9953007630, 9953007631, circulation@chronicleindia.in

सर्वाधिकार सुरक्षित © क्रॉनिकल पब्लिकेशंस प्रा. लि.: इस प्रकाशन के किसी भी अंश का प्रतिलिपिकरण, ऐसे यंत्र में भंडारण जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो या स्थानान्तरण, किसी भी रूप में या किसी भी विधि से- इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या किसी और ढंग से, प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता।

पुस्तक में प्रकाशित सामग्री उपरोक्त विषय पर प्रकाशित पुस्तकों/जर्नल/रिपोर्ट/ऑनलाइन कंटेंट आदि से संकलित है। लेखक/संकलनकर्ता/प्रकाशक, प्रकाशित सामग्री की मूल लेखन का दावा नहीं करता। प्रकाशित सामग्री को पूर्णतः त्रुटि रहित बनाने का प्रयास किया गया है, फिर भी किसी भी प्रकार के त्रुटि के लिए क्षतिपूर्ति का दावा प्रकाशक/लेखक द्वारा स्वीकार नहीं किया जाएगा। शंका की स्थिति में पाठक स्वयं भारत सरकार के दस्तावेज व अन्य स्रोतों के माध्यम से जांच कर सकते हैं
सभी विवादों का निपटारा दिल्ली न्यायिक क्षेत्र में होगा।, **मुद्रकः** एस के एंटरप्राइजेज, मुंडका, उद्योग नगर, इंडस्ट्रियल एरिया, नई दिल्ली - 110041

पुस्तक के संबंध में

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा के नवीनतम पाठ्यक्रम पर आधारित विगत 16 वर्षों (2006-2021) के प्रश्नों का अध्यायवार हल

प्रश्नों को हल करने की प्रकृति: पुस्तक में प्रश्नों के उत्तर को मॉडल हल के रूप में दिया गया है। प्रश्नों को हल करते समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि उत्तर सारगर्भित हो, तथा पूछे गए प्रश्नों के अनुरूप हो। पुस्तक में प्रश्नों के इतर भी विशिष्ट जानकारी को उत्तर में समाहित किया गया है, ताकि अभ्यर्थी इसका उपयोग न सिर्फ हल प्रश्न पत्र के रूप में, बल्कि अध्ययन सामग्री के रूप में भी कर सकें।

पुस्तक का उपयोग कैसे करें?: इस पुस्तक का उपयोग अभ्यर्थी अपने उत्तर लेखन शैली में सुधार लाने तथा प्रश्नों की प्रवृति व प्रकृति को समझने के लिये कर सकते हैं। किसी भी परीक्षा के विगत वर्षों के प्रश्न इसमें सबसे लाभदायक होते हैं। पुस्तक में दी गई सामग्री का इस्तेमाल बिंदुवार, निश्चित शब्द सीमा का पालन, उप-शीर्षक एवं आरेख आदि का प्रयोग अभ्यर्थी अपने उत्तर लेखन शैली के अभ्यास हेतु आधुनिक परिपेक्ष में कर सकते हैं। पुस्तक में प्रश्नों के उत्तर उसके सम्बंधित वर्ष के अनुसार ही दिया गया है।

भूगोल- एक वैकल्पिक विषय के रूप में: हाल के वर्षों में सिविल सेवा की परीक्षा हेतु उपलब्ध विभिन्न वैकल्पिक विषयों के पाठ्यक्रमों में अत्यधिक बदलाव हुए हैं एवं इस बदलाव के पश्चात 'भूगोल' विषय की लोकप्रियता एक वैकल्पिक विषय के रूप में काफी तेजी से बढ़ी है। इस विषय की लोकप्रियता का एक सबसे महत्वपूर्ण कारण इसका संकल्पना आधारित होना है। एक बार समझ विकसित हो जाने पर इस विषय में रटने की आवश्यकता नहीं पड़ती। वस्तुत: भूगोल को आज 'कला' में 'विज्ञान' भी कह सकते हैं। यही कारण है कि इस विषय में अच्छे अंकों की संभावना कला विषयों में सबसे अधिक है। इस विषय की दूसरी विशेषता है सही रणनीति की मदद से न्यूनतम समय में तैयारी, ताकि अच्छे अंक भी हासिल हों और कोई जोखिम भी न रहे। भूगोल विषय का अध्ययन आपके दृष्टिकोण को व्यापक बनाता है, जिससे आप विभिन्न घटनाक्रमों को प्रेरित करने वाले कारकों को समझ सकने की वैज्ञानिक दृष्टि पाते हैं। यह दृष्टि आपको न सिर्फ सामान्य अध्ययन बल्कि साक्षात्कार में भी अच्छे अंक लाने में सहयोग करता है।

यह पुस्तक छात्रों को संघ लोक सेवा आयोग मुख्य परीक्षा के आलावा राज्य लोक सेवा आयोगों (उत्तर प्रदेश, बिहार, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, एवं झारखण्ड) के बदले हुए पाठ्यक्रम में आयोजित होने वाले सिविल सेवा मुख्य परीक्षा के भूगोल के प्रश्न पत्र में उपयोगी साबित होगा।

संपादक

अनुक्रमणिका

विषयवार हल प्रश्न-पत्र 2006-2021

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021 (प्रथम प्रश्न-पत्र) 1-21
सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021 (द्वितीय प्रश्न-पत्र) 22-42

प्रथम प्रश्न-पत्र

- भू-आकृतिक विज्ञान 05–29
- जलवायु विज्ञान 30–53
- समुद्र विज्ञान 54–72
- जैव भूगोल 73–86
- पर्यावरणीय भूगोल 87–110
- आर्थिक भूगोल 111–122
- जनसंख्या एवं बस्ती भूगोल 123–146
- प्रादेशिक आयोजन 147–156
- मानव भूगोल में मॉडल, सिद्धान्त एवं नियम 157–167
- मानव भूगोल में संदर्श 168–188

द्वितीय प्रश्न-पत्र

- मानचित्र आधारित प्रश्न 189–205
- भौतिक विन्यास 206–229
- संसाधन 230–241
- कृषि 242–263
- उद्योग 264–280
- परिवहन, संचार एवं व्यापार 281–287
- बस्तियां 288–305
- प्रादेशिक विकास एवं आयोजन 306–328
- सांस्कृतिक विन्यास 329–338
- राजनीतिक भूगोल 339–347
- समकालीन भूगोल 348–368

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021 (प्रथम प्रश्न-पत्र)

भूगोल

भू-आकृतिक विज्ञान

प्र. *उच्चस्थ समतलन (अल्टीप्लेनेसन) अवधारणा का वर्णन कीजिए।*

उत्तर: उच्चस्थ समतलन, समतलीकरण (वृक्षारोपण) की एक प्रक्रिया है, जो उच्च ऊंचाई वाले पेरी-हिमनद क्षेत्रों में संपन्न होती है। ग्लेशियर अपने साथ मोराइन (मलबे या नष्ट सामग्री) लाते हैं और उन्हें या तो पेरिग्लेशियल क्षेत्रों के गड्ढों (ट्रफ) में जमा करते हैं या पेरिग्लेशियल क्षेत्रों के ढलानों पर जमा करके ऊंचा लेवलिंग (जिसे उच्चस्थ टेरेस भी कहा जाता है) टेरेस बनाते हैं। पेरिग्लेशियल क्षेत्रों में, भूमि का समतलीकरण भी अपरदन की प्रक्रिया के माध्यम से होता है।

उच्चस्थ समतलन को इक्वि-प्लानेशन और क्रायो-प्लानेशन के रूप में भी जाना जाता है। उच्चस्थ समतलन शब्द का प्रयोग पहली बार 1916 में एकिन द्वारा पेरिग्लेशियल क्षेत्रों में पेरिग्लेशियल जलवायु के तहत समतलन प्रक्रिया को समझाने के लिए किया गया था।

वर्ष 1946 में ब्रायन द्वारा फिर से उसी अवधारणा का इस्तेमाल किया गया, उन्होंने क्रायो-प्लानेशन शब्द का इस्तेमाल किया। अधिकतर भूगोलवेत्ता या अन्य विद्वान पेरीग्लेशियल क्षेत्रों में भूमि को समतल करने की प्रक्रिया को समझाने के लिए क्रायो-प्लानेशन शब्दों का उपयोग करते हैं।

उच्चस्थ समतलन की विशेषता

- उच्चस्थ समतलन को अधिक ऊंचाई पर स्थित होने के कारण टेरेस (छत) कहा जाता है। विश्व की सबसे ऊँचे छत पामीर का पठार है।
- इन छतों को ढलानों द्वारा अलग किया जाता है, जिनकी ऊंचाई 2 मीटर से 12 मीटर तक होती है। छतें 10 से 90 मीटर लंबी और 800 मीटर तक चौड़ी होती हैं।

प्र. *प्लेट विवर्तनिकी की संकल्पना, समस्थिति और महाद्वीपीय अपवाह सिद्धान्त (ड्रिफ्रटथ्योरी) से लिया गया है। उपयुक्त उदाहरण देते हुए विस्तार से बताइये।*

उत्तर: जर्मन मौसमविद अल्फ्रेड वेगनर (Alfred Wegener) ने "महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत" सन् 1912 में प्रस्तावित किया। यह सिद्धांत महाद्वीप एवं महासागरों के वितरण से ही संबंधित था। इस सिद्धांत की आधारभूत संकल्पना यह थी कि सभी महाद्वीप एक अकेले भूखंड में जुड़े हुए थे। वेगनर के अनुसार आज के सभी महाद्वीप इस भूखंड के भाग थे तथा यह एक बड़े महासागर से घिरा हुआ था। उन्होंने इस बड़े महाद्वीप को पैंजिया (Pangaea) का नाम दिया। पैंजिया का अर्थ है- संपूर्ण पृथ्वी। विशाल महासागर को पैंथालासा (Panthalassa) कहा, जिसका अर्थ है- जल ही जल।

वेगनर के तर्क के अनुसार लगभग 20 करोड़ वर्ष पहले इस बड़े महाद्वीप पैंजिया का विभाजन आरंभ हुआ। पैंजिया पहले दो बड़े महाद्वीपीय पिंडों लारेशिया (Laurasia) और गोंडवानालैंड (Gondwanaland) क्रमश: उत्तरी व दक्षिणी भूखंडों के रूप में विभक्त हुआ। इसके बाद लारेशिया व गोडवानालैंड धीरे-धीरे अनेक छोटे हिस्सों में बंट गए, जो आज के महाद्वीप के रूप हैं।

1930 के दशक में आर्थर होम्स (Arthur Holmes) ने मैंटल (Mantle) भाग में संवहन-धाराओं के प्रभाव की संभावना व्यक्त की। ये धाराएं रेडियोएक्टिव तत्त्वों से उत्पन्न ताप भिन्नता से मैंटल भाग में उत्पन्न होती हैं। होम्स ने तर्क दिया कि पूरे मैंटल भाग में इस प्रकार की धाराओं का तंत्र विद्यमान है। यह उन प्रवाह बलों की व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास था, जिसके आधार पर समकालीन वैज्ञानिकों ने महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत को नकार दिया।

ऐयारी के अनुसार, हिमालय का आतंरिक भाग खोखला नहीं हो सकता है। वास्तव में अधिक पदार्थ का भार नीचे से कम पदार्थ द्वारा संतुलित हो जाता है। उन्होंने अपनी समस्थिति सिद्धांत में सुझाव दिया कि पृथ्वी की क्रस्ट अधिक घनत्व वाले अध:स्तर में तैर रही हैं अर्थात सियाल, सीमा पर तैर रहा है। अर्थात महाद्वीपीय भाग एक ही प्रकार के घनत्व वाले शैलों का बना है परन्तु उसके विभिन्न भागों कि गहराई में पर्याप्त अंतर पाया जाता है।

आगे चलकर सन् 1967 में मैक्कैन्ज़ी (Mckenzie), पारकर (Parker) और मोरगन (Morgan) ने स्वतंत्र रूप से उपलब्ध विचारों को समन्वित कर अवधारणा प्रस्तुत की, जिसे 'प्लेट विवर्तनिकी' (Plate tectonics) कहा गया। एक विवर्तनिक प्लेट (जिसे लिथोस्फेरिक प्लेट भी कहा जाता है), ठोस चट्टान का विशाल व अनियमित आकार का खंड है, जो महाद्वीपीय व महासागरीय स्थलमंडलों से मिलकर बना है। ये प्लेटें दुर्बलतामंडल (Asthenosphere) पर एक दृढ इकाई के रूप में क्षैतिज़ अवस्था में चलायमान हैं।

स्थलमंडल में पर्पटी एवं ऊपरी मैंटल को सम्मिलित किया जाता है, जिसकी मोटाई महासागरों में 5 से 100 कि.मी. और महाद्वीपीय भागों में लगभग 200 कि.मी. है। एक प्लेट को महाद्वीपीय या महासागरीय प्लेट भी कहा जा सकता है; जो इस बात पर निर्भर है कि उस प्लेट का अधिकतर भाग महासागर अथवा महाद्वीप से संबद्ध है। उदाहरणार्थ प्रशांत प्लेट मुख्यत: महासागरीय प्लेट है, जबकि यूरेशियन प्लेट को महाद्वीपीय प्लेट कहा जाता है।

लेट विवर्तनिकी के सिद्धांत के अनुसार पृथ्वी का स्थलमंडल सात मुख्य प्लेटों व कुछ छोटी प्लेटों में विभक्त है। नवीन वलित पर्वत श्रेणियाँ, खाइयाँ और भ्रंश इन मुख्य प्लेटों को सीमांकित करते हैं। महाद्वीप एक प्लेट का हिस्सा है और प्लेट चलायमान हैं। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि भूवैज्ञानिक इतिहास में सभी प्लेट गतिमान रही हैं और भविष्य में भी गतिमान रहेंगी।

वेगनर के अनुसार आरंभ में, सभी महाद्वीपों से मिलकर बना एक सुपर महाद्वीप (Super continent) पैंजिया के रूप में विद्यमान था। यद्यपि बाद की खोजों ने यह स्पष्ट किया कि महाद्वीपीय पिंड, जो प्लेट के ऊपर स्थित हैं, भूवैज्ञानिक काल पर्यन्त चलायमान थे और पैंजिया अलग-अलग महाद्वीपीय खंडों के अभिसरण से बना था, जो कभी एक या किसी दूसरी प्लेट के हिस्से थे।

पुराचुंबकीय (Palaeomagnetic) आँकड़ों के आधार पर वैज्ञानिकों ने विभिन्न भूकालों में प्रत्येक महाद्वीपीय खंड की अवस्थिति निर्धारित की है। भारतीय उपमहाद्वीप (अधिकांशत: प्रायद्वीपीय भारत) की अवस्थिति नागपुर क्षेत्र में पाई जाने वाली चट्टानों के विश्लेषण के आधार पर आँकी गई है।

प्लेट संचरण के फलस्वरू तीन प्रकार की प्लेट सीमाएँ बनती हैं।

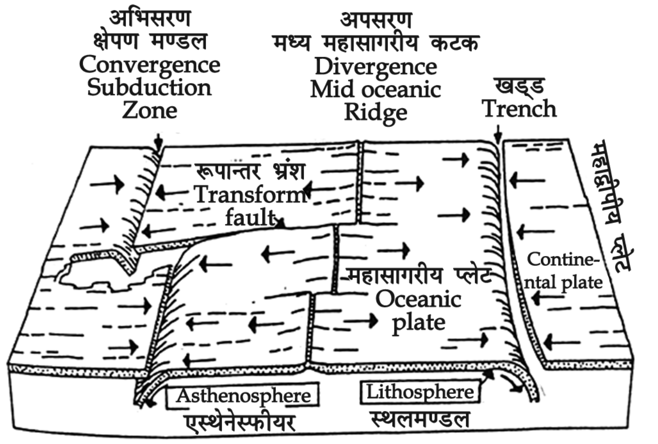

अपसारी सीमा (Divergent boundaries): जब दो प्लेट एक दूसरे से विपरीत दिशा में अलग हटती हैं और नई पर्पटी का निर्माण होता है। उन्हें अपसारी प्लेट कहते हैं। वह स्थान जहाँ से प्लेट एक दूसरे से दूर हटती हैं, इन्हें प्रसारी स्थान (Spreading site) भी कहा जाता है। अपसारी सीमा का सबसे अच्छा उदाहरण मध्य-अटलांटिक कटक है। यहाँ से अमेरिकी प्लेटें (उत्तर अमेरिकी व दक्षिण अमेरिकी प्लेटें) तथा यूरेशियन व अफ्रीकी प्लेटें अलग हो रही हैं।

अभिसरण सीमा (Convergent boundaries): जब एक प्लेट दूसरी प्लेट के नीचे धंसती है और जहां भूपर्पटी नष्ट होती है, वह अभिसरण सीमा है। वह स्थान जहाँ प्लेट धंसती हैं, इसे प्रविष्ठन क्षेत्र (Subduction zone) भी कहते हैं। अभिसरण तीन प्रकार से हो सकता है- (1) महासागरीय व महाद्वीपीय प्लेट के बीच (2) दो महासागरीय प्लेटों के बीच (3) दो महाद्वीपीय प्लेटों के बीच।

रूपांतर सीमा (Transform boundaries): जहाँ न तो नई पर्पटी का निर्माण होता है और न ही पर्पटी का विनाश होता है, उन्हें रूपांतर सीमा कहते हैं। इसका कारण है कि इस सीमा पर प्लेटें एक दूसरे के साथ-साथ क्षैतिज दिशा में सरक जाती हैं। रूपांतर भ्रंश (Transform faults) दो प्लेट को अलग करने वाले तल हैं जो सामान्यत: मध्य-महासागरीय कटकों से लंबवत स्थिति में पाए जाते हैं। क्योंकि कटकों के शीर्ष पर एक ही समय में सभी स्थानों पर ज्वालामुखी उद्गार नहीं होता, ऐसे में पृथ्वी के अक्ष से दूर प्लेट के हिस्से भिन्न प्रकार से गति करते हैं। इसके अतिरिक्त पृथ्वी के घूर्णन का भी प्लेट के अलग खंडों पर भिन्न प्रभाव पड़ता है।

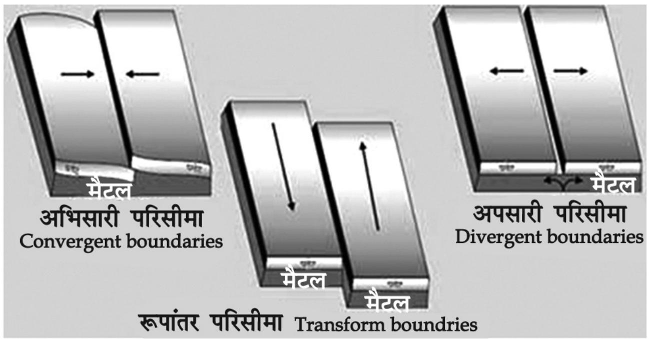

जिस समय वेगनर ने महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत प्रस्तुत किया था, उस समय अधिकतर वैज्ञानिकों का विश्वास था कि पृथ्वी एक ठोस, गति रहित पिंड है। यद्यपि सागरीय अधस्तल विस्तार और प्लेट विवर्तनिक-दोनों सिद्धांतों ने इस बात पर बल दिया कि पृथ्वी का धरातल व भूगर्भ दोनों ही स्थिर न होकर गतिमान हैं।

प्लेट विचरण करती है-यह आज एक अकाट्य तथ्य है। ऐसा माना जाता है कि दृढ प्लेट के नीचे चलायमान चट्टानें वृत्ताकार रूप में चल रही हैं। उष्ण पदार्थ धरातल पर पहुँचता है, फैलता है और धीरे-धीरे ठंडा होता है; फिर गहराई में जाकर नष्ट हो जाता है। यही चक्र बारंबार दोहराया जाता है और वैज्ञानिक इसे संवहन प्रवाह (Convection flow) कहते हैं।

पृथ्वी के भीतर ताप उत्पत्ति के दो माध्यम हैं- रेडियोधर्मी तत्वों का क्षय और अवशिष्ट ताप। आर्थर होम्स ने सन् 1930 में इस विचार को प्रतिपादित किया। जिसने बाद में हैरी हेस की सागरीय तल विस्तार अवधारणा को प्रभावित किया। दृढ प्लेटों के नीचे दुर्बल व उष्ण मैंटल है, जो प्लेट को प्रवाहित करता है। अत: यह कहा जा सकता है कि प्लेट विवर्तनिकी की संकल्पना, समस्थिति और महाद्वीपीय अपवाह सिद्धांत से लिया गया है।

प्र. मृदा अपरदन तथा मृदा निम्नीकरण खाद्य आपूर्ति में खतरा है। विवेचना कीजिए।

उत्तर: भूमि हमारे लिए एक मौलिक संसाधन है। भूमि की जीवन और मनुष्यों तथा जन्तुओं के विभिन्न क्रियाकलापों को सहारा देने की क्षमता जैविक उत्पादकता एवं मृदा और चट्टानों दोनों कि भर वहन करने कि क्षमता पर निर्भर करता है। मृदा, जो भूमि कि सबसे उपर की परत बनाती है, सभी संसाधनों में सबसे बहुमूल्य है, क्योंकि यह जीवनतंत्र को सहारा देती है।

मृदा निम्नीकरण सामान्यत: कृषि, उद्योग और शहरीकरण के लिए मृदा का अवैज्ञानिक प्रबंधन और अनावश्यक इस्तेमाल के कारण मृदा गुणवत्ता में भौतिक, रासायनिक और जैविक रूप से गिरावट है।

मृदा मौलिक प्राकृतिक संसाधन है और समस्त धरातलीय जीवन का आधार है। सामान्य रूप से, मृदा निम्नीकरण में मृदा की उत्पादन करने की क्षमता में गुणात्मन, मात्रात्मक, सेवा और वस्तुओं में कमी के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

जबकि मृदा अपरदन वह प्रक्रिया है, जिसमें मृदा की उपरी परतें हट जाती है और पवन अथवा जल द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जायी जाती है। इस प्रक्रिया में खनिज कण, कार्बनिक तत्व और पोषक मृदा से बहार हो जाते हैं, जिससे उसकी जल उत्पादकता और जल धारण क्षमता में कमी हो जाती है और अपरदित मृदा सरिताओं के मध्यम से जलाशयों में एक प्रदूषक बन जाता है।

मृदा अपरदन और मृदा निम्नीकरण व खाद्य आपूर्ति

विश्व में मनुष्य अपने भोजन (कैलोरी) का 99.7 प्रतिशत से अधिक भूमि से प्राप्त करते हैं और 0.3 प्रतिशत से कम महासागरों और जलीय पारिस्थितिक तंत्र से प्राप्त करते हैं, इसलिए मानव कल्याण के लिए फसल भूमि को संरक्षित करना और मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखना सर्वोच्च महत्व होना चाहिए। मृदा अपरदन विश्व खाद्य उत्पादन के सामने सबसे गंभीर खतरों में से एक है। हर साल लगभग 10 मिलियन हेक्टेयर फसल भूमि मिट्टी के कटाव के कारण नष्ट हो जाती है, जिससे विश्व खाद्य उत्पादन के लिए उपलब्ध फसल भूमि कम हो जाती है।

मृदा अपरदन और मृदा निम्नीकरण प्रत्यक्ष रूप से कृषि को प्रभवित करते है, जिससे कृषि के उत्पादकता में ह्रास होने के साथ ही फसल की पोषक तत्व नष्ट हो जाता है, जिससे भोजन द्वारा प्राप्त होने वाले पोषक तत्व में कमी के कारण जनसंख्या के अधिकांश लोग अल्प पोषित हो जाते हैं।

वर्तमान समय में मृदा अपरदन और मृदा निम्नीकरण का सबसे बड़ी समस्या, रासायनिक उर्वरकों का बढ़ता प्रयोग है, जिससे मृदा में उपस्थित सुक्ष्मपोषक तत्वों की कमी हो जाती है और जलानिकयों का सुपोषण हो जाता है और बच्चों में नाइट्रोसोएमीनिया हो जाता है। पादप सुरक्षा रसायनों का उपयोग खाद्य उत्पादों को विषाक्त कर देता है।

मृदा अपरदन पूरे विश्व में एक विनाशकारी पर्यावरणीय समस्या है। अपरदन एक धीमी गति से होने वाली समस्या है, जो निरंतर बनी रहती है। दरअसल, वर्षा या हवा से मृदा का अपरदन होता है, जिसपर किसान और अन्य लोगों का ध्यान नहीं जाता है। फिर भी एक हेक्टेयर से अधिक फसल भूमि का यह नुकसान लगभग 15 टन / हेक्टेयर है। कृषि परिस्थितियों में मिट्टी की इस मात्रा को फिर से भरने के लिए लगभग 20 वर्षों की आवश्यकता होती है, इस बीच खोई हुई मिट्टी फसलों को सहारा देने के लिए उपलब्ध नहीं होती है।

मिट्टी के नुकसान के साथ-साथ पानी, पोषक तत्वों, मिट्टी के कार्बनिक पदार्थ और मिट्टी के बायोटा की हानि होती है। जब मिट्टी का कटाव होने दिया जाता है तो मृदा प्रणाली को गंभीर नुकसान होता है। यह भविष्य की खाद्य सुरक्षा के लिए खतरा है, जहां फसल की उत्पादकता में काफी कमी के कारण फसल भूमि का क्षरण होने दिया जाता है।

कृषि भूमि की कमी का पहले से ही विश्व खाद्य उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है।

प्र. ***महाद्वीपों पर वर्षण के विविध प्रतिरूपों को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों का परीक्षण कीजिए।***

उत्तर: जब जल तरल (जल बिन्दुओं) या ठोस (हिमकणों) रूप में धरातल पर गिरता है तो उसे वर्षण कहते हैं। वायु में संघनन की सतत प्रक्रिया के परिणामस्वरूप जल बिन्दुओं या हिम कणों का भार अधिक व आकार बड़ा हो जाता है तथा वे वायु में तैरते हुये रूक नहीं पाते तो पृथ्वी के धारातल पर गुरुत्वाकर्षण के कारण नीचे गिरने लगता है।

पृथ्वी पर वर्षण कई रूपों में होता है जैसे जल की बूंदों, हिमलव व ठोस बर्फ या ओला तथा कभी-कभी एक साथ जल की बूदों व ओले के रूप में। वर्षण का रूप अधिकाशत: संघनन की विधि व तापमान पर निर्भर करता है। वर्षण के अनेक रूप हैं:-

- **फुहार तथा वर्षा:** जब समान आकार की अत्यन्त छोटी-छोटी बूदें जिनका व्यास 0.5 मि.मि. से कम होता है धारातल पर गिरती हैं तो उसे फुहार कहते हैं। जब जल की छोटी-छोटी बूदें मिलकर बड़ी बूदों के रूप में धारातल पर गिरती हैं तो उसे वर्षा कहते हैं।
- **हिमपात:** जब संघनन हिमांक (-00 से.) से नीचे तापमान पर होता है तो वायुमण्डलीय आर्द्रता हिमकणों में बदल जाती है। ये छोटे-छोटे हिमकण मिलकर हिमलव बनाते हैं। जो बड़े और भारी होकर धारातल पर गिरने लगते हैं। वर्षण के इस रूप को हिमपात कहते हैं।
- **सहिम वर्षा:** सहिम वर्षा जमी हुई वर्षा है। यह तब होती है जब वायु की ठंडी परत से गुजरती हुई पानी की बूदें जमकर ठोस होकर धारातल पर गिरती हैं। सामान्यतया यह पानी की बूंदों तथा छोटे-छोटे ठोस बर्फ के गोलियों का मिश्रित रूप है।
- **ओला पात:** जब बर्फ का टुकड़ा या छोटा गोला (Hailstones) जिसका व्यास 5 से 50 मि.मी. तक होता है, अलग-अलग या सम्मिलित होकर विभिन्न आकारों के पिण्ड के रूप में धारातल पर गिरता है तो उसे 'ओला पात' कहते हैं।

वर्षा के वितरण को प्रभावित करने वाले कारक

नमी की आपूर्ति: किसी प्रदेश में वर्षा की मात्रा को निर्धारित करने वाला महत्वपूर्ण कारक वायुमंडल को मिलने वाली नमी की मात्रा है। ऊष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में वाष्पीकरण सर्वाधिक होता है। अत: वायुमंडल को इस क्षेत्र से सबसे ज्यादा नमी की आपूर्ति होती है। तटीय भागों में आन्तरिक भागों की अपेक्षा अधिक नमी मिलती है। ध्रुवीय प्रदेशों में वाष्पीकरण बहुत कम है, अत: वहाँ वर्षा भी कम है।

पवनों की दिशा: सन्मार्गी एवं पछुआ पवनों की पेटियों में पवन दिशा महत्वपूर्ण है। समुद्र से स्थल की ओर चलने वाली पवनें वर्षा करती हैं। स्थल से चलने वाली पवनें शुष्क होती हैं। उच्च अक्षांशों से निम्न अक्षांशों की ओर चलने वाली पवनें गर्म हो जाती हैं, अत: बहुत कम वर्षा करती हैं (जबकि निम्न अक्षांशों से उच्च अक्षांशों की ओर चलने वाली पवनें ठंडी हो जाती हैं और वर्षा करती हैं। उपोष्ण मरूस्थलों में बहुत कम वर्षा होती हैं) क्योंकि वहाँ से पवनें बाहर की ओर चलती हैं।

महासागरीय धारायें: गर्म धाराओं के ऊपर की वायु गर्म और आर्द्र होती है। अत: यह वर्षा करती है। इसके विपरीत ठंडी धााराओं के ऊपर की वायु ठंडी और शुष्क होती है। अत: उससे बहुत कम वर्षा होती है।

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021 (द्वितीय प्रश्न-पत्र)

भूगोल

मानचित्र आधारित प्रश्न

प्र. आपको दिए गए भारत के रेखामानचित्र पर निम्नलिखित सभी की स्थिति को अंकित कीजिए। अपनी क्यू.सी.ए. पुस्तिका में इन स्थानों में से प्रत्येक का भौतिक/वाणिज्यिक/आर्थिक/पारिस्थितिक/पर्यावरणीय/सांस्कृतिक महत्व अधिकतम 30 शब्दों में लिखिए: ***(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)***

(i) जीरो घाटी
(ii) खेचेओपलरी झील
(iii) तोरणमाल
(iv) सुवर्णरेखा नदी
(v) कोडरमा
(vi) सर क्रीक
(vii) पेरियार वन्यजीव अभयारण्य
(viii) पीची डैम
(ix) दीघा बीच
(x) पम्बन द्वीप

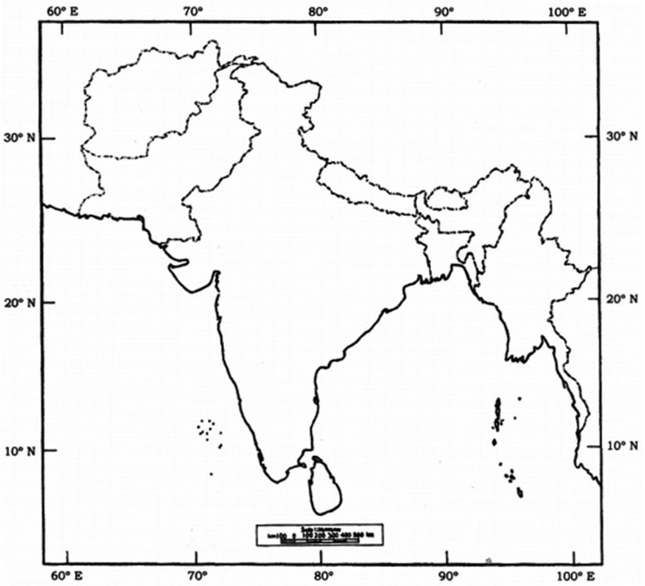

उत्तर: (i): जीरो वैली अरुणाचल प्रदेश के लोअर सुबानसिरी जिले में स्थित है। जीरो वैली को पर्यटकों द्वारा एक रमणीय स्थान के रूप में माना जाता है, जो अपने समृद्ध वन्यजीव के लिए भी लोकप्रिय है। यह शहर अपातानी जनजाति का निवास स्थान है, जिसके त्योहार, रीति-रिवाज और परंपराएं भी जनजाति के रूप में विशिष्ट हैं।

जीरो वैली सुबनसिरी जिले का जिला मुख्यालय है और यह अरुणाचल प्रदेश के सबसे पुराने शहरों में से एक है। यह 27.63°N और 93.83° E में 1688 मीटर से 2438 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। जीरो वैली में टैली वैली वाइल्डलाइफ सैंक्चुअरी स्थित है, जिसे जैव-विविधता क्षेत्र भी कहा जाता है, 337 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में फैला है। इस जगह में कुछ लुप्तप्राय प्रजातियों सहित वनस्पतियों और जीवों की एक विस्तृतशृंखला है। ऑर्किड, बांस और फर्न्स की आश्चर्यजनक रेंज पौधों के बीच सबसे आम हैं। इस जगह को जीरो वैली का मुख्य आकर्षण माना जाता है। तलली घाटी के रास्ते में, दो पहाड़ी दिलोपोलयांग मणिपोल्यांग स्थित है।

जीरो पुतो एक पहाड़ी स्थान है जहां आजादी के बाद पहला प्रशासनिक केंद्र स्थापित किया गया था। जीरो पुतो को सेना पुतो के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि वर्ष 1960 में सेना छावनी की स्थापना की गई थी। यह पहाड़ी अपातानी पठार का शानदार दृश्य प्रस्तुत करती है। इसके साथ ही डोलो मंडो पहाड़ी, जीरो के पश्चिम में स्थित है। यह स्थान मुख्य रूप से पुराने जीरो और हापोली के भव्य दृश्य देने के लिए लोकप्रिय है।

हाल ही में भारत सरकार के पूर्वोत्तर क्षेत्र विकास मंत्रालय की पूर्वोत्तर परिषद (एनईसी) के तहत पूर्वोत्तर क्षेत्र सामुदायिक संसाधन प्रबंधन सोसायटी (एनईआरसीआरएमएस) ने अरुणाचल प्रदेश की जीरो वैली चौरिटी मिशन सोसाइटी (जेडवीसीएमएस) के सहयोग से अरुणाचल प्रदेश में निचले सुबनसिरी जिले के सुपीयू गांव में सेब के बगीचे में सेब के पेड़ों की छंटाई और रोपण के बाद प्रबंधन पर एक प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन किया।

(ii): खेचोपलरी झील पश्चिमी सिक्किम में एक पवित्र तीर्थ स्थल है, जिसे हिंदुओं और बौद्धों द्वारा पवित्र माना जाता है। स्थानीय लोगों के अनुसार, यह जगह यहां आने वाले व्यक्ति की इच्छाओं को पूरा करती है। पौराणिक कथाओं के अनुसार झील के आकार को भगवान शिव के पदचिह्न कहा जाता है।

'खेचेओपलरी' दो शब्दों 'खचेओ' और 'पलरी' से मिलकर बना है, जिसका अर्थ क्रमश: 'उड़ने वाले फरिश्ते या स्वर्गदूत' और 'महल' है। यह सुंदर झील 'खा-चोट-पलरी' नाम से भी जानी जाती है और यह खेचोएडपलडरी पहाड़ी से घिरी हुई है।

ऐसा माना जाता है कि गुरु पद्मसंभव ने इस प्राचीन झील में 64 योगिनी को शिक्षा दी थी। यह भी माना जाता है कि झील 'देवी तारा' की पदचिन्ह है। देवी तारा वज्रयान बौद्ध धर्म में महिला बुद्ध हैं।

(iii): तोरणमाल भारत के महाराष्ट्र राज्य के नंदुरबार जिले में स्थित एक गाँव है। यह एक रमणीय हिल स्टेशन है। धुले जिले से अलग होकर नंदुरबार जिला का गठन किया गया, जो 1 जुलाई, 1998 से अस्तित्व में आया। इस क्षेत्र का प्राचीन नाम रसिका था।

नंदुरबार पर प्राचीन समय में यादवों के राजा शौनचंद्र ने शासन किया था, जिसे बाद में मुसलमानों के आगमन के साथ, फारुकी राजाओं को दी गई खान की उपाधि के अनुरूप इसका नाम बदलकर खानदेश कर दिया गया था। तोरणमल सतपुड़ा पर्वत श्रेणी का एक भाग है। यह एक हिन्दू तीर्थस्थल भी है जो अपने गोरखनाथ मंदिर के लिए प्रसिद्द है। तोरणमल चारों तरफ से हरियाली और एक बड़े से झील से घिरा हुआ है।

(iv): सुवर्णरेखा नदी भारत की मुख्य अंतरराज्यीय नदी घाटियों में सबसे छोटी है, जो झारखंड, पश्चिम बंगाल और ओडिशा राज्यों से होकर बहती है। सुवर्णरेखा नदी की प्रमुख सहायक नदियाँ खरकई नदी, रोरो नदी, कांची नदी, हरमू नाडी, डामरा नदी, कररू नदी, चिंगुरू नदी, करकरी नदी, गुरमा नदी, गर्रा नदी, सिंगदुबा नदी, कोडिया नदी, दुलुंगा नदी और खेजोरी नदी हैं।

सुवर्णरेखा नदी उन क्षेत्रों को पार करती है जहाँ तांबे और यूरेनियम अयस्कों का व्यापक खनन होता है। इस प्रकार, अनियोजित खनन गतिविधियों के कारण नदी प्रदूषित हो जाती है। सुवर्णरेखा नदी भारत के छोटा नागपुर क्षेत्र में बसे आदिवासी समुदायों की जीवन रेखा है। जल प्रदूषण से आदिवासी लोगों के जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

(v): हजारीबाग जिला में सन 1973 में कोडरमा अनुमंडल बना था। बाद में 10 अप्रैल 1994 को इसे पूर्ण जिले का दर्जा प्राप्त हुआ।झारखंड राज्य के कोडरमा जिला अभ्रक खनन के लिए दुनिया भर में प्रसिद्ध है, विशेष रूप से रूबी अभ्रक के लिए। कोडरमा जिला में अभ्रक मुख्य रूप से ढाब, ढोढाकोला, खलगतमबी, डिबोर, बांद्राचुआ, इत्यादि क्षेत्रों में पाई जाती है।

कोडरमा झारखंड के उन जिलों में से एक है, जो प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक संसाधनों और खनिज संपदा से समृद्ध है। इसे भारत की माइका कैपिटल या अब्राह-नागरी के रूप में जाना जाता था। वर्तमान में कोडरमा जिले में हजारों एकड़ से अधिक माईका खनन के पट्टे हैं। वन संरक्षण अधिनियम 1980 के लागू होने के बाद ही सभी अभ्रक खानों को बंद कर दिया गया था क्योंकि सभी खनन पट्टे जंगल के अभयारण्य क्षेत्र में आते हैं।

कोडरमा जिला 24.15’46” और 24.49’18’ ‘अक्षांश और 85. 26’01” और 85.54’16” देशान्तर से घिरा हुआ है और लगभग 1655.61 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल को कवर करता है। यह उत्तर में बिहार के नवादा जिले से,दक्षिण में झारखंड के हजारीबाग जिले, पूर्व में झारखंड के गिरिडीह जिले द्वारा और पश्चिम में बिहार के गया जिले से घिरा हुआ है।

(vi): सर क्रीक, कच्छ मार्शलैंड के रण में भारत और पाकिस्तान के बीच विवादित पानी की एक 96 किलोमीटर लंबी पट्टी है। जल की इस धारा को मूल रूप से बान गंगा के नाम से जाना जाता है।

सर क्रीक की यह धारा पाकिस्तान के सिंध प्रांत को गुजरात के कच्छ क्षेत्र से विभाजित करती हुई अरब सागर में जा गिरती है। सर क्रीक सीमा रेखा विवाद वस्तुत: कच्छ और सिंध के बीच समुद्री सीमा रेखा की अस्पष्ट व्याख्या के कारण उपजा है।

स्वतंत्रता से पहले, यह प्रांतीय क्षेत्र ब्रिटिश भारत के बॉम्बे प्रेसीडेंसी का भाग था। वर्ष 1947 में भारत की आजादी के बाद सिंध पाकिस्तान का हिस्सा बन गया, जबकि कच्छ भारत का ही हिस्सा रहा। पाकिस्तान द्वारा प्रस्तुत दावों के अनुसार, वर्ष 1914 में तत्कालीन सिंध सरकार और कच्छ के राव महाराज के बीच हस्ताक्षरित ‘बंबई सरकार संकल्प’ (Bombay Government Resolution) के अनुच्छेद 9 एवं 10 के अनुसार पूरे क्रीक क्षेत्र पर उसी का अधिकार है।

सर क्रीक का इसकी सामरिक अवस्थिति के अलावा भी बहुत महत्त्व है। यह क्षेत्र मछुआरों के संदर्भ में भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। ध्यातव्य है कि सर क्रीक एशिया के सबसे बड़े मछली पकड़ने वाले क्षेत्रों में से एक है। इसके अलावा इस क्षेत्र में समुद्र के नीचे तेल और गैस के विशाल भंडार उपस्थित होने के कारण (सीमा विवाद के चलते इनका अभी तक अधिक दोहन नहीं किया गया है) भी इस क्षेत्र का अपना अलग महत्त्व है।

(vii): केरल में पेरियार टाइगर रिजर्व द्वारा भारत में पहली बार बाघ शावको को वन पर्यावरण में प्राकृतिक रूप से शिकार करने के लिये प्रशिक्षित किये जाने हेतु एक कार्यक्रम की शुरुआत की गई है।

यह अभयारण्य/रिजर्व केरल राज्य के इडुक्की और पठानमथिट्टा जिले (पश्चिमी घाट के दक्षिणी क्षेत्र में स्थित) में स्थित है। इस अभयारण्य में उष्णकटिबंधीय सदाबहार, अर्द्ध सदाबहार, आर्द्र पर्णपाती वन और घास के मैदान शामिल हैं, जिसमें में पुष्पीय पौधों की लगभग 1966 प्रजातियाँ पाई जाती हैं। इसे वर्ष 1950 में अभयारण्य और वर्ष 1978 में एक बाघ अभयारण्य के रूप में नामित किया गया था। इस अभयारण्य का नाम पेरियार नदी से प्रेरित है, जिसका उद्गम स्थल इस अभयारण्य के भीतर ही है।

(viii): पीची बांध त्रिशूर से लगभग 22 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यह केरल का एक उल्लेखनीय बांध है और यह राज्य के सबसे पुराने बांधों में से एक है। पीची बांध परियोजना सबसे पहले सिंचाई की परियोजना के रूप में सामने आई थी, लेकिन इस परियोजना ने क्षेत्र में रहने वाले लोगों की पेयजल आवश्यकताओं को भी पूरा करती है।

इस बांध के जलाशय आगंतुकों को नौका विहार की सुविधा प्रदान करते हैं, जिससे अधिक से अधिक पर्यटक नौका विहार और आसपास की प्राकृतिक सुंदरता का आनंद लेने के लिए इस स्थान पर जाते हैं।

(ix): दीघा (Digha) बीच भारत के पश्चिम बंगाल राज्य के पूर्व मेदिनीपुर जिले में स्थित है, जो बंगाल की खाड़ी के तट पर स्थित है। इसका मूल नाम वीरकुल है, जिसकी खोज 18वीं शताब्दी में अंग्रेजों द्वारा की गई थी। दीघा तट दुनिया भर में सबसे चौड़े समुद्र तटों में से एक है। इस सुंदर और स्वच्छ दीघा तट से पर्यटक पूरे राज्य के सबसे बेहतरीन सूर्यास्त का नजारा देख सकते हैं।

दीघा तट सपाट और कठोर है। भारत के पूर्व गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने इसे ‘पूर्व का ब्राइटन’ कहा था। इस समुद्र तट के निकट ही एशिया का सबसे बड़ा समुद्री मछली घर (अक्वेरियम) और अनुसंध ान केंद्र स्थित है।

(x): पंबन द्वीप दक्षिण भारत के मन्नार की खाड़ी में स्थित है, जिसकी समुद्र तल से औसत ऊंचाई 10 मीटर (32 फीट) है। पंबन द्वीप में उष्णकटिबंधीय आर्द्र और शुष्क जलवायु पाया जाता है। यहां 94 सेमी की औसत वार्षिक वर्षा होती है। पंबन द्वीप मुख्य भूमि से

एक अलग द्वीप शहर है। रामनाथ स्वामी मंदिर पंबन द्वीप के प्रमुख क्षेत्र में स्थित है।

पंबन द्वीप का संदर्भ रामायण से मिलता है। पौराणिक किंवदंतियों के अनुसार पंबन द्वीप वह स्थान है जहां से भगवान राम ने समुद्र के पार राम सेतु पुल का निर्माण किया था। माना जाता है कि भगवान राम पहाड़ियों से लंका राज्य का निरीक्षण करते थे। यह वह स्थान भी है जहां राम ने महादेव की पूजा की थी। वैष्णववाद और शैव धर्म दोनों के लोग पंबन द्वीप पर जाते हैं। इसे दक्षिण भारत का वाराणसी कहा जाता है।

भौतिक विन्यास

प्र. हिमालयी क्षेत्र में भूस्खलन एक बड़ी समस्या है। इसके कारणों एवं अल्पीकरण के उपायों की विवेचना कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: हिमालय भू-दृश्य भूस्खलन और भूकंप के लिये अतिसंवेदनशील क्षेत्र हैं। हिमालय का निर्माण भारतीय और यूरेशियाई प्लेटों के टकराने से हुआ है। भारतीय प्लेट के उत्तर दिशा की ओर गति के कारण चट्टानों पर लगातार दबाव बना रहता है, जिससे वे कमजोर हो जाती हैं और भूस्खलन एवं भूकंप की संभावना बढ़ जाती है। इस परिदृश्य के साथ खड़ी ढलानों, ऊबड़-खाबड़ स्थलाकृति, उच्च भूकंपीय भेद्यता और वर्षा का मेल इस क्षेत्र को विश्व के सबसे अधिक आपदा प्रवण क्षेत्रों में से एक बनाता है।

भूस्खलन के कारण :

जटिल भूगर्भीय संरचना और दुर्बल चट्टानों वाले पहाड़, अनायास वर्षा और भूकंप के झटके जैसे बाहरी ट्रिगरिंग बलों के कारण ढलानों को अतिसंवेदनशील बना देता है। परन्तु ज्यादातर भूस्खलन, जटिल भूवैज्ञानिक विशेषताओं, प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों, अनियोजित विकास संबंधी गतिविधियों के कारण होता है। हिमालय क्षेत्रों में भूस्खलन के कई महत्वपूर्ण कारण है:

- **विकासात्मक गतिविधियां:** राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर वृहत् सड़क विस्तार परियोजना (चार धाम राजमार्ग), पनबिजली परियोजनाओं के निर्माण और कस्बों के अनियोजित विस्तार से लेकर असंवहनीय पर्यटन तक, हिमालयी क्षेत्रों में भूस्खलन को बढ़ावा दिया है।
- वृहत् पनबिजली परियोजनाएं (जो 'हरित' ऊर्जा का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं और जीवाश्म ईंधन से प्राप्त ऊर्जा को स्वच्छ ऊर्जा से प्रतिस्थापित करती हैं) पारिस्थितिकी के कई पहलुओं को परिवर्तित कर सकती हैं और इसे बादल फटने, अचानक बाढ़ आने, भूस्खलन और भूकंप जैसी चरम घटनाओं के प्रभावों के प्रति संवेदनशील बनाती हैं।
- **विकास के असंगत मॉडल:** हिमालय क्षेत्रों में विकास का असंगत मॉडल भूस्खलन को बढ़ावा देता है, जहाँ जंगलों के विनाश और नदियों पर बाँध निर्माण जैसी कार्रवाइयों के साथ वृहत् जलविद्युत परियोजनाओं तथा बड़े पैमाने पर निर्माण गतिविधियों को आगे बढ़ाया जा रहा है।
- **हिमालयी पारिस्थितिकी पर ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव:** भंगुर स्थलाकृति और जलवायु-संवेदनशील योजना के प्रति पूर्ण उपेक्षा के भाव के कारण पारिस्थितिकी के लिये खतरा कई गुना बढ़ गया है। ग्लेशियर पिघल रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप जलराशि में अचानक हो रही वृद्धि हिमालय क्षेत्र में भूस्खलन की प्रवृति को बढ़ावा दिया है।
- **हिमालयी क्षेत्रों में भूमि के उपयोग में बदलाव:** वनों का कृषि भूमि में रूपांतरण, लकड़ी, चारा एवं ईंधन की लकड़ी और जंगल में आग की बढ़ती घटनाओं ने भी हिमालयी क्षेत्र में भूस्खलन की प्रवृति को बढ़ावा दिया है। एक अनुमान के अनुसार भारतीय भूमि का 15 प्रतिशत या 0.49 मिलीयन वर्ग किलोमीटर क्षेत्र भूस्खलन जोखिम उन्मुख है, जिसमें से 0.392 मिलीयन वर्ग किलोमीटर हिमालयी क्षेत्र का भाग है।

भूस्खलन के अल्पीकरण के उपाय

- **परियोजना को लागू करने से पूर्व आकलन की आवश्यकता:** किसी भी परियोजना को लागू करने से पहले विस्तृत परियोजना रिपोर्ट (DPR), पर्यावरण प्रभाव आकलन (EIA) और सामाजिक प्रभाव आकलन (SIA) को आवश्यक बनाया जाना चाहिये और साथ ही सरकार को सतत विकास पर केंद्रित होना चाहिये, न कि केवल उस विकास पर जो पारिस्थितिकी के विरुद्ध प्रेरित है।
- **राजमार्गों के नेटवर्क और भूस्खलन की विस्तृत सूचि तैयार करना:** भूस्खलन की डिजिटल सूचि के लिए डाटा संकलन, प्रबंधन और उनका नवीनीकरण है। भूस्खलन का डेटाबेस एवं सूचि का होना किसी भी राजमार्ग के मूलभूत सुविधाओं के निर्माण और प्रबंधन कार्यों से ज्यादा जरुरी है। डेटाबेस किसी भी भूस्खलन खतरे के आंकलन के लिए बहुत जरुरी हैं जैसे कि भूस्खलन की बारंबारता, रन आउट दुरी, वेग आदि।
- **वैज्ञानिक अध्ययन को बढ़ावा देना:** विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग के तहत एक स्वायत्त संस्थान, वाडिया इंस्टीट्यूट ऑफ हिमालयन जियोलॉजी (डब्लयूआईएचजी) के वैज्ञानिकों ने निचले हिमालयी क्षेत्र में मसूरी और उसके आसपास के 84 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र का अध्ययन किया और पाया कि भूस्खलन वाले अतिसंवेदनशील क्षेत्र का बड़ा हिस्सा भाटाघाट, जॉर्ज एवरेस्ट, केम्प्टी फॉल, खट्टापानी, लाइब्रेरी रोड, गलोगीधार और हाथीपांव जैसे बसावट वाले क्षेत्रों के अंतर्गत आता है जो 60 डिग्री से अधिक ढलान वाले अत्यधिक खंडित क्रोल चूना पत्थर से आच्छादित हैं।
- **निर्माण कार्य के समय भूस्खलन के विभिन्न संभावित कारकों पर ध्यान केन्द्रित करना:** वैज्ञानिकों के अनुसार निर्माण कार्य करते समय क्षेत्र में भूस्खलन के विभिन्न संभावित कारकों में लिथोलॉजी, लैंड्यूज-लैंडकवर (एलयूएलसी), ढलान, पहलू, वक्रता, ऊंचाई, सड़क-कटान जल निकासी और लाइनामेंट आदि पर ध्यान देना चाहिए।
- **क्षेत्रीय सहयोग:** हिमालयी देशों के बीच एक सीमा-पारीय गठबंधन की आवश्यकता है ताकि पहाड़ों के सम्बन्ध में ज्ञान साझा किया जा सके और वहाँ की पारिस्थितिकी का संरक्षण किया जा सके।
- **क्षेत्र विशिष्ट सतत् योजना:** सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि क्षेत्र की वर्तमान स्थिति की समीक्षा की जाए और एक सतत/संवहनीय योजना तैयार की जाए जो इस संवेदनशील क्षेत्र की विशिष्ट आवश्यकताओं तथा जलवायु संकट के प्रभाव का ध्यान रखती हो।

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा (प्रथम प्रश्न-पत्र)

भू-आकृतिक विज्ञान

प्र. वाताग्रजनन और वाताग्रविनाश की अभिलाक्षणिक विशेषताओं की व्याख्या कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग: वाताग्रजनन और वाताग्रविनाश की अभिलाक्षणिक विशेषताओं के संबंध में व्याख्या करनी है।

उत्तर: जब किसी प्रदेश में दो भिन्न गुणों वाली वायुराशियां, जिनके वायु दाब, तापमान एवं आर्द्रता आदि गुणों में पर्याप्त अन्तर विद्यमान रहता है। एक-दूसरे के निकट आ जाती है तब वे एक-दूसरे के साथ पूर्ण रूप से नहीं मिल पाती। उसके बीच कुछ समय के लिए असांतत्य पृष्ट (Surface of discountinuity) का निर्माण हो जाता है। यह पृष्ट ढलुआं होता है। दो परस्पर विरोधी वायु राशियों के मध्य निर्मित ढलुआ सीमा सतह को वाताग्र कहते हैं। ये वाताग्र त्रिविमीय होते हैं। त्रिविमीय वायुराशियों को उर्ध्वाधर सीमा में पृथक करने वाले तल को वाताग्र पृष्ट कहते हैं। वाताग्र वायुराशियों के मध्य स्थित स्पष्ट विभाजक रेखाएं नहीं होती, बल्कि एक निश्चित चौड़ाई 5 से 80 किलोमीटर तक हो सकती है। वाताग्र जनन का अर्थ है 'वाताग्रों का निर्माण या उत्पत्ति अथवा 'क्षीण प्राय: वाताग्रों को पुन: शक्तिशाली हो जाना।' Frontogensis लैटिन भाषा का शब्द है जिसका मूल अर्थ होता है- 'वाताग्र निर्माण'। वाताग्र जनन के लिए इस बात की अपेक्षा होती है कि प्रचलित पवनों के द्वारा विभिन्न घनत्व वाली वायुराशियों की वाताग्र रेखा एक-दूसरे के निकट लायी जाए। इन वायु राशियों के तापमान में विषमता वाताग्र जनन की दूसरी महत्वपूर्ण शर्त है। इन दोनों शर्तों के एक साथ पूरी होने पर ही वाताग्रों का जन्म होता है।

दूसरे शब्दों में दो विभिन्न तापमान एवं घनत्व वाली वायुराशियों के अभिसरण (Converge) से वाताग्र जनन होता है। इसके विपरीत जब दो विभिन्न वायु राशियों का प्रवाह इस प्रकार का होता है कि वे एक-दूसरे के दूर हट जाती है अथवा समीपस्थ वायु राशियों के तापमान का अन्तर किन्हीं कारणों से समाप्त हो जाता है तब वाताग्रों का विघटन हो जाता है अथवा पूर्व निर्मित वाताग्र क्षीण होने लगते हैं। इसे वाताग्र विनाश कहते हैं। वाताग्र की विशेषताएं निम्नवत हैं-

(i) तापमान

प्रत्येक वाताग्र के आर-पार वायु के तापमान में भारी अन्तर पाया जाता है। वाताग्रों पर शीतल और भारी वायुराशि के ऊपर उष्ण वायु पुंज के आरोहण के परिणामस्वरूप सदैव तापमान में विलोमता पाई जाती है।

(ii) वायु-दाब

वाताग्रों पर वायुदाब प्रवणता में आकस्मिक परिवर्तन के कारण समदाब रेखाओं में तीव्र मोड़ उत्पन्न हो जाते हैं। वाताग्रों को पार करते समय समदाब रेखाएं अनिवार्य रूप से निम्न दाब की ओर मुड़ जाती है। समदाब रेखाओं के झुकाव से फन (Wedge) का निर्माण होता है, जो उच्च दाब की ओर संकेत करता है। वाताग्र सदैव न्यूनदाब गर्त या द्रोणी में स्थित होता है।

(iii) पवनें

वाताग्र में पवन का प्रवाह पृथ्वी के विक्षेपक बल (Deflective force) द्वारा निर्धारित होता है। वाताग्र में हवाएं समदाब रेखाओं के साथ न्यूनकोण बनाती हुई चलती है। वायुदाब प्रवणता में आकस्मिक परिवर्तन पवनों की दिशा में उसके अनुकूल परिवर्तन कर देता है। यदि किसी वाताग्र के एक ओर स्थित उष्ण कटिबंधीय वायु राशि में पवन की दिशा दक्षिण-पश्चिम है, तो वाताग्र को पार करते ही ध्रुवीय वायु राशि में इसकी दिशा उत्तर-पश्चिम हो जाती है।

(iv) मेघ एवं वर्षण

वाताग्र में गर्म व आर्द्र वायु ऊपर की ओर उठकर ठण्डी होती है। इसे 'रूद्धोष्म ताप ह्रास' कहते हैं। इससे वाताग्र प्रदेशों में आकाश में मेघाच्छादन रहता है तथा अनुकूल परिस्थितियों में वृष्टि होती है। मेघों और वृष्टि की मात्रा वाताग्र के ढाल तथा आरोही वायु में आर्द्रता की मात्रा पर निर्भर करती है।

प्र. अपरदन पृष्ठों की समस्याओं की विवेचना कीजिए और उपयुक्त चित्रों सहित उनको पहचानने की विभिन्न विधियों की व्याख्या कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग:
- अपरदन पृष्ठों की समस्याओं की विवेचना करना है।
- उपयुक्त चित्रों के माध्यम से उसको पहचानने की विधियों की व्याख्या करनी है।

उत्तर: पृथ्वी के धरातल पर दिखाई पड़ने वाला ऐसे पृष्ठ, जो भूवैज्ञानिक संरचनाओं के अनाच्छादनात्मक प्रक्रमों के घर्षण एवं कांट-छांट क्रिया के द्वारा तरंगित समतल पृष्ट में बदल गये हैं। अपरदन पृष्ठ या समतलीकरण पृष्ठ कहलाते हैं।

अफ्रीका का अधिकांश भाग विस्तृत मैदानों से युक्त हैं, जो विविध भूवैज्ञानिक संरचनाओं के आर-पार विसंगत रूप से कटे हुए हैं, इसलिए इन्हें अपरदन पृष्ठों के रूप में पहचाना जाता है। दक्षिण-पूर्वी ब्रिटेन में 200 से 300 मी. ऊंचे अनेक शिखरों को तृतीयक अपरदन पृष्ठों के अवशेष के रूप में देखा जाता है, परंतु कुछ भूआकृति वैज्ञानिक इस मान्यता पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं कि सुसंगत शिखर किसी अपरदन पृष्ठ का अवशेष है। अफ्रीका में गोंडवाना पृष्ठ के अवशेष अधिक ऊंचाईयों पर पहचाने गए हैं जैसे- मलावी का न्याका पठार।

अपरदन पृष्ठ किसी क्षेत्र के अदृश्य का महत्वपूर्ण हिस्सा है तथा वे उस क्षेत्र के अनाच्छादन कालानुक्रम के पुनर्निर्माण के लिए महत्वपूर्ण भाग होते हैं। वास्तव में इसे चौरस या लगभग चौरस अपरदनात्मक मैदान के रूप में जाना जाता है, जो आधार-तल के काफी निकट तथा अपरदन चक्र के परिणामस्वरूप निर्मित हुए हैं और जो युवावस्था से काफी आगे या कभी-कभी वृद्धावस्था में पहुंच चुके हैं।

सम्प्रदाय मैदान, पैनप्लेन, पेडीप्लेन एवं सागरीय अपरदन से निर्मित मैदान तल अपरदन पृष्ठ का मुख्य उदाहरण है। इसे मुख्य अपरदन पृष्ठ के नाम से जाना जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानों ने कुछ भोज-पृष्ठों को भी अपरदन पृष्ठ की सूची में सम्मिलित करने का सुझाव दिया है। इसका निर्माण नदी, हिमनदी, पवन, भूमिगत जल तथा समुद्री लहरों द्वारा होता है, परंतु परिभाषा की दृष्टि से अपरदन पृष्ठ का निर्माण अपरदन चक्र के लगभग अंतिम दौर में आधारतल के बराबर होता है।

किसी क्षेत्र में अपरदन पृष्ठों की पहचान एक कठिन कार्य है। उल्लेखनीय है कि वर्तमान सागर-तल (अपरदन का आधार-तल) के बहुत निकट पाये जाने वाले अपरदन पृष्ठों को ढूंढ पाना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि उनके निर्माण (पेनीप्लेनेशन) के बाद ये पृष्ठ विवर्तनिक गतिविधियों से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। अत: इसकी काफी संभावना है कि वे अपेक्षाकृत अधिक ऊंचाई पर स्थित होंगे। यदि अपरदन पृष्ठ वर्तमान सागर-तल के निकट पाये जाते हैं, तो इसका स्पष्ट अर्थ है कि इसका अवतलन हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप इसकी ऊंचाई कम हो गई है। यह भी उल्लेखनीय है कि उत्तर चतुर्थक कालीन वास्तविक अपरदन पृष्ठों का पाया जाना कठिन है, क्योंकि ऐसे पृष्ठों को पुरा होने के लिए पर्याप्त समय की कमी के कारण ये निर्मित ही नहीं हो पाये होंगे। इसलिए तृतीयक युग से कम आयु के अपरदन पृष्ठ नहीं पाये जाते हैं, लेकिन आंशिक अपरदन पृष्ठ विकसित हो सकते हैं। अत: यह सुस्पष्ट है कि उत्तर-तृतीयक युगीन अपरदन पृष्ठ संभव हो सकते हैं। अपरदन पृष्ठ तृतीयक या उससे अधिक प्राचीन हो सकते हैं।

अपरदन पृष्ठों की पहचान एवं निर्धारण कुछ भू-ज्यामितीय तकनीकों के आधार पर की जाती है, जैसे- तुंगतामापी बारंबारता आयत चित्रों एवं वक्रों तथा आध्यारोपित परिच्छेदिका व क्षेत्रीय परिक्षण आदि। अपरदन पृष्ठ के परिवर्तन की प्रकृति अनेक तत्वों पर निर्भर करती है जैसे- पृष्ठ की आयु, पृष्ठ पर बाढ़ में निक्षेपित अवसादों की मुराई, उन चट्टानों का सापेक्षिक कड़ापन जिन पर ये अपरदन पृष्ठ निर्मित हुए हैं, धाराओं की संख्या एवं अंतराल (अर्थात धारा बारंबारता एवं अपवाह घनत्व) आदि। यह सामान्य मान्यता है कि जितना पुराना अपरदन पृष्ठ होता है, उसका उतना ही प्राचीन अपरदन पृष्ठ नवीन पृष्ठों की तुलना में पर्यावरणीय कारकों द्वारा अधिक परिवर्तित हो जाते हैं।

इन परिवर्तनों एवं संशोधनों की तीव्रता मात्र उन पृष्ठों को निर्मित करने वाले चट्टानों की सापेक्षिक प्रतिरोधकता पर निर्भर करती है। यदि दो अपरदन पृष्ठ अगल-बगल समान ऊंचाई पर पाये जाते हैं, लेकिन उनकी चट्टानी विशेषताएं अलग-अलग हैं अर्थात एक पृष्ठ कड़ी प्रतिरोधक चट्टानों पर तथा दूसरी अपेक्षाकृत मुलायम और कमजोर चट्टानों पर विकसित हुई हो तो पहला अपरदन पृष्ठ दूसरे की तुलना में अधिक पुराना होगा। अधिक धारा बारंबारता एवं उच्च अपवाह घनत्व वाले अपरदन पृष्ठ अधिक संशोधनों से प्रभावित होते हैं तथा निम्न धारा बारंबारता एवं निम्न अपवाह घनत्व वाले अपरदन पृष्ठ की तुलना में काफी पहले नष्ट हो जाते हैं।

अपरदन पृष्ठों की प्रकृति एवं रूप में काफी भिन्नता होती है। प्रतिरोधी चट्टानों पर निर्मित अपेक्षाकृत युवा पृष्ठ (अर्थात उत्तर-तृतीयक और पूर्व चतुर्थक) विस्तृत पठारों के रूप में पाये जाते हैं, जिनमें सुसंगत ऊंचाईयों एवं चौरस शीर्ष अंतर्प्रवाह क्षेत्र मौजूद होते हैं। दूसरी ओर यदि पृष्ठ पूर्व तृतीयक या मध्यजीवी काल का है, तो वे अधिक अपरदित दशा में पाये जाते हैं। जिनमें पृष्ठ अनगिनत खण्डों में विभाजित पाये जाते हैं, जो सुसंगत शिखर तलों के रूप में उपस्थित होते हैं। यदि पृष्ठ मध्य जीवी से अधिक पुराने हैं, तो यह संभावना है कि पृष्ठ अनाच्छादनात्मक प्रक्रमों के गतिज क्रियाओं द्वारा नष्ट हो गया हो।

चित्रों द्वारा पहचानने की विधियां:

समतल मैदान चित्र में लिखना है-

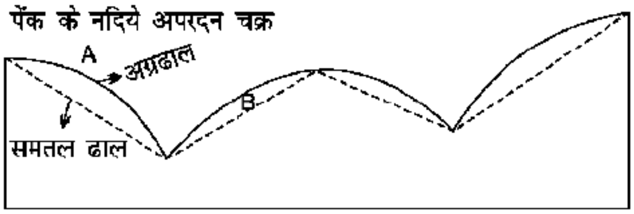

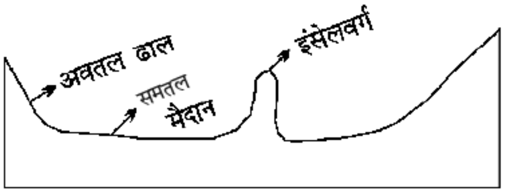

पेंक महोदय के अनुसार जब नदी प्रारंभिक अवस्था से होकर गुजरती है तो लम्बवत अपरदन करती है, जिसके कारण अवतल ढाल का निर्माण करती है और बाद में यह ढाल समतल ढाल में बदल जाता है और जब नदी प्रौढ़ावस्था से गुजरती है तो वह क्षैतिज अपरदन करती है, जिसके कारण समतल मैदान का निर्माण होता है और कठोर चट्टाने जिसका नदी अपरदन नहीं कर पाती तो वह छोटे-छोटे टीले की आकृति दिखाई पड़ती है, जिसे इन्सेलबर्ग कहते हैं।

2. डेविस का अपरदन चक्र

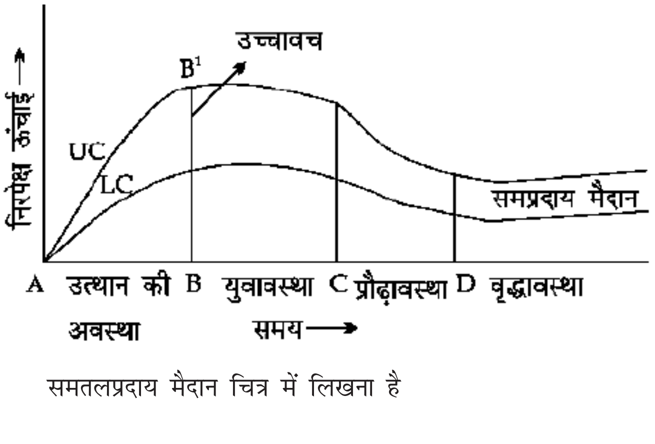

समतलप्रदाय मैदान चित्र में लिखना है

जलवायु विज्ञान

प्र. भारत में संकटों और आपदाओं के प्रति मानव अनुक्रिया एवं प्रबंधन की विवेचना कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग: भारत में संकटों और आपदाओं के समय मानव द्वारा किया जाने वाली अनुक्रिया एवं प्रबंधन के संबंध में विवेचना करना है।

उत्तर: प्रारंभ से ही मानव को पर्यावरणीय संकटों का सामना करना पड़ा है। पर्यावरणीय संकट प्रकृति की स्वयं की अन्तर्जात गतिविधियों के परिणामस्वरूप तो उत्पन्न होते ही हैं साथ ही साथ मानव की अनाधिकृत छेड़-छाड़ के कारण भी उत्पन्न होते हैं। ज्वालामुखी उद्‌गार, भूकंप, सुनामी, चक्रवात, भूस्खलन, बाढ़, सूखा, महामारियां आदि ऐसे ही पर्यावरणीय संकट हैं, जो संपूर्ण पृथ्वी को प्रभावित करते हैं।

पर्यावरणीय आपदाओं एवं संकटों को उनके मुख्य कारक तत्वों के आधार पर हो वर्गों में बांट सकते हैं-

(i) **प्राकृतिक आपदाएं एवं संकट**

(ii) **मानव जनित आपदाएं एवं संकट**

प्राकृतिक आपदाएं एवं संकट को भी दो उप-वर्ग में बांटा जाता है- पृथ्वी ग्रहीय आपदाएं तथा पृथ्वेत्तर या बाह्य ग्रहीय आपदाएं।

पृथ्वी की ग्रहीय आपदाओं एवं संकटों में धरातलीय या अन्तर्जात आपदाएं तथा वायु मंडलीय या बहिर्जात आपदाएं शामिल होती हैं। दूसरी ओर मानव जनित आपदाओं में भौतिक आपदाएं जैसे भूस्खलन, त्वरित मृदा अपरदन आदि रासायनिक एवं परमाण्विक आपदाएं तथा जीव वैज्ञानिक आपदाएं शामिल की जाती है।

इन सभी प्रकार की आपदाओं का मानव जीवन, संपत्ति एवं पर्यावरण पर व्यापक दुष्प्रभाव पड़ता है। मानवीय गतिविधियां पर्यावरणीय अवमानना का संपूर्ण विश्व में प्रधान कारण है। पर्यावरण पर मानव की गतिविधियों का प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, लघु या वृहत, पूर्वानुमान के अनुरूप या इतर हो सकते हैं, जो प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र में पहुंचाए गए बाधा की प्रकृति, तीव्रता एवं बारम्बारता पर निर्भर करती है।

पर्यावरणीय संकट से तात्पर्य उस अवस्था से है, जब प्रकृति प्रदत्त पर्यावरणीय दशाओं में मानवीय छेड़छाड़ से ऋणात्मक परिवर्तन आता है, जिसका नुकसान मानव को ही उठाना पड़ता है, जो धन-जन के विनाश के रूप में सामने आता है। उदाहरणस्वरूप भूस्खलन, प्रदूषण आदि।

भारत में आपदा प्रबंधन में सुधार हेतु उठाए गए कदम-

पिछले कुछ वर्षों में भारत एवं विश्व के अन्य विकसित एवं विकासशील देशों पर पर्यावरण का इतने बड़े पैमाने पर निम्नीकरण तथा प्रदूषण हुआ है कि पर्यावरण प्रबंधन वर्तमान समय की पहली प्राथमिकता बन गई है। पर्यावरण प्रबंधन के लिए शीघ्र ही ठोस कदम उठाने की जरूरत है नहीं तो वर्तमान पीढ़ी के साथ-साथ हमारी भावी पीढ़ियों का अस्तित्व भी खतरे में पड़ सकता है। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी ही पर्यावरण ीय समस्याएं होती हैं और पर्यावरणीय प्रबंधन की विधि एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र तक परिवर्तित होती रहती है।

आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में अनेक कमियों के बावजूद भारत में इस दिशा में काफी प्रगति हुई है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जो भारत में आपदाओं से निपटने में हमारी सफलता एवं अच्छे अनुभवों का आभास करते हैं। उनमें से कुछ उल्लेखनीय कदम इस प्रकार हैं-

(i) महाराष्ट्र के लातूर में आए भूकंप के विनाश से सीख लेकर, वहां भारत का प्रथम आपदा प्रबंध सूचना नेटवर्क प्रणाली स्थापित की गई। उसी तर्ज पर पूरे देश में सूचना प्रणाली स्थापित किए जाने की आवश्यकता है।

1993 के लातूर भूकंप के शीघ्र बाद ही राज्य ने महाराष्ट्र आपातकालीन भूकंप पुनर्वास कार्यक्रम की शुरुआत की। यह कार्यक्रम सूचना-तंत्र की सहायता से ऐसी तैयारी करने का लक्ष्य रखता है, जिससे कि किसी अनुमानों से दूर तथा अनियंत्रित आपदा से होने वाली क्षति को नियोजित एवं प्रबंधित आपदा निराकरण प्रयासों के द्वारा न्यूनतम किया जा सके। इस सूचना-तंत्र में राज्य सरकार की मशीनरी को इसके सभी तहसीलों एवं जिलों के साथ तथा अन्य महत्वपूर्ण व आर्थिक दृष्टि से प्रमुख एजेंसियों के साथ जोड़ा गया है। सम्भावित प्राकृतिक संकट क्षेत्रों के लिए सांख्यिकी तैयार की जा रही है। ज्वारीय गतियों, संभावित टाइफूनों एवं भूकंप प्रभावित क्षेत्रों को भौगोलिक सूचना-तंत्र के साथ जोड़ा जा रहा है। बाढ़, भूकंप आदि प्राकृतिकआपदाओं की पूर्व चेतावनी देने के अलावा, इस नेटवर्क के द्वारा आपदा के उपरांत सहायता एवं पुनर्वास में भी सहायता मिलेगी।

(ii) पूर्व के अनुभवों से सीख लेकर कुछ राज्यों की सरकारें जैसे- 1919 में आन्ध्र प्रदेश में राज्य सरकार लगभग 6 लाख लोगों को 52 घंटे के अंदर एक आने वाले चक्रवात के मार्ग से हटाने में सफल हुई थी, क्योंकि सरकार के पास पहले से ही नियोजित कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार की थी फलस्वरूप मरने वाले की संख्या 10वें हिस्से से भी कम रही।

यह उपलब्धि परम्परागत एवं आधुनिक तकनीकों के सम्मिलित तरीके को अपनाकर ही प्राप्त हो सकी थी।

(iii) IMD ने भूकंपीय त्रासदी का पूर्वानुमान लगाने हेतु एक राष्ट्रीय भूकंपीय ऐलिमेट्री संजाल का निर्माण किया है। गुजरात भूकंप के पश्चात आधुनिकतम सुविधाओं से लैस 10 नये भूकंपीय सतर्कता केंद्र स्थापित किए गए हैं तथा वर्तमान 45 सतर्कता केंद्रों में से 14 आधुनिक डिजिटल भूकंपमापियों से लैस करके उन्नत किया गया, ताकि भूकंप क्षेत्रों में भूकंपों के प्रभावों का बेहतर प्रेक्षण किया जा सके।

(iv) IMD ने देश के संपूर्ण तटरेखा के सहारे चक्रवात पूर्व चेतावनी केंद्रों की स्थापना की है। चक्रवात की चेतावनी से संबंधित सूचना को कृषि मंत्रालय में स्थापित केंद्रीय नियंत्रण कक्ष को उपलब्ध कराया जाता है। इसके अलावा उच्च शक्ति वाले चक्रवात की चेतावनी के लिए संसूचक रडारों को तटीय पेटी में स्थापित किया गया है, जो इन चक्रवातों को 400 कि.मी. के रेंज में पकड़ सकते हैं। उपग्रहीय चित्रण भी एक अन्य महत्वपूर्ण उपकरण है, जो चक्रवातों के रडारों की पकड़ से दूर रहने पर भी उनकी पूर्व चेतावनी दे देता है। ISRO ने भारतीय तटरेखा के सहारे 250 तूफान चेतावनी रिसीवर लगाने की योजना बनायी है। संकट के समय में रिसीवर उपग्रह के माध्यम से चालू हो जाते हैं और सायरन तथा स्थानीय भाषा में चेतावनी के प्रसारण करने लगते हैं।

(v) भारत में आपदा प्रबंधन हेतु संस्थागत संरचना के रूप में आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 लाया गया, जिससे भारत में आपदा प्रबंधन हेतु कानूनी और संस्थागत संरचना का प्रावधान राष्ट्रीय, राज्य और जिला स्तर पर किया गया है। केंद्र सरकार योजनाएं, नीतियां और दिशा-निर्देश तैयार करती है और तकनीकी वित्तीय और संभरण सहायता देती है, जबकि जिला प्रशासन केंद्रीय और राज्य स्तर की एजेंसियों के साथ मिलकर अधिकांश कार्यों को सम्पन्न करता है।

प्र. व्याख्या कीजिए कि विभिन्न कारक भारतीय मानसून प्रणाली की उत्पत्ति और विकास को कैसे प्रभावित करती है।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग: भारतीय मानसून प्रणाली की उत्पत्ति और विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की चर्चा करनी है।

उत्तर: भारत की जलवायु को केवल एक शब्द से अभिव्यक्त किया जा सकता है और वह है मानसून। केवल यह एक शब्द ही ऋतुओं का लय, उसमें हवा की दिशा में आने वाली परिवर्तनों, वर्षा का वितरण-प्रतिरूप तथा मौसम में परिवर्तन के साथ-साथ तापक्रम के वितरण प्रतिरूप आदि को व्यापक रूप में वर्णित कर देता है। मानसून शब्द मूलत: अरबी भाषा के मौसम शब्द से बना हुआ है। इसका अर्थ है वर्षभर में हवाओं के प्रतिरूप में होने वाला ऋतुवत प्रत्यावर्तन। इसके अन्तर्गत हवा वर्ष भर में लगभग 6 महीने तक ठीक उलटी दिशा से चलती है। मानसून जलवायु का विशिष्ट लक्षण है तथा संपूर्ण दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्व एशिया की जलवायु की विशेषता है। मानसून पवनें ग्रीष्म ऋतु के 6 माह समुद्र से स्थल की ओर एवं शीत ऋतु के 6 माह स्थल से समुद्र की ओर चलती है।

मानसून की उत्पत्ति संबंधी विचारधाराओं को निम्नलिखित दो वर्गों में बांटा जाता है-

(i) चिरसम्मत विचारधारा

(ii) आधुनिक विचारधारा

(i) **चिरसम्मत विचारधारा:** इंग्लैंण्ड के विख्यात विद्वान एडमण्ड हैली ने बताया कि मानसून पवनों में उत्क्रमण जलीय तथा स्थलीय प्रदेशों के तापमान में अन्तर होने को कारण होता है। यह अन्तर ऋतु परिवर्तन के अनुसार होता है। इसके अनुसार मानसून दो प्रकार का होता है। पहला ग्रीष्म कालीन मानसून तथा दूसरा शीतकालीन मानसून।

(ii) **आधुनिक विचारधारा:** हैली का विचार साधारण तौर पर तर्कसंगत दिखाई देता है, परन्तु यह मानसून पवनों की बारिकियों को समझने में असमर्थ है। यद्यपि विद्वानों ने हैली के तापीय सिद्धान्त को पूर्णतया अस्वीकार नहीं किया यद्यपि विश्वभर के जलवायु वैज्ञानिक मानसून पवनों की उत्पत्तिए विशेषतया भारत की दक्षिणी-पश्चिमी मानसून की उत्पत्ति के संबंध में गहन अध्ययन कर रहे हैं। विदेशी वैज्ञानिक फ्लोन, थॉमसन, फ्रॉस्ट, ई. पालमेन एवं सी. न्यूटन के अलावा भारतीय वैज्ञानिक पी. कोटेश्वरम, कृष्णन, रमन, कृष्णमूर्ति, रामास्वामी, अनन्त कृष्णन आदि ने मानसून पवनों की उत्पत्ति का सही कारण ढूंढने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इन विद्वानों के विचारों को हम निम्नलिखित दो वर्गों में बांट सकते हैं-

(i) **वायुराशि विचारधारा**

(ii) **जेट-प्रवाह विचारधारा**

मानसून की उत्पत्ति एवं विकास को प्रभावित करने वाले कारक

(i) **अल-नीनो प्रभाव:** भारत में अल-नीनो के प्रभाव से मानसून भी प्रभावित होती है, जो बाढ़ एवं सूखे के लिए उत्तरदायी है। एल-नीनो एक संकड़ी गर्म समुद्री जलधारा है, जो कभी-कभी दक्षिणी अमेरिका के पेरु तट से कुछ दूरी पर दिसम्बर के महीने में दिखाई देती है। यह कई बार पेरु की ठण्डी धारा के स्थान पर अस्थायी गर्म धारा के रूप में बहने लगती है। कभी-कभी अधिक तीव्र होने पर यह समुद्र के ऊपरी जल के तापमान को 10^{o}C तक बढ़ा देती है। ऊष्ण कटिबंधीय प्रशान्त महासागरीय जल के गर्म होने से भूमण्डलीय दाब व पवन तंत्रों के साथ-साथ हिन्द महासागर में मानसून पवनें भी प्रभावित होती है। ऐसा माना जाता है कि 1987 में भी भयंकर सूखा एल-नीनो का ही परिणाम था। अल-नीनो के कारण भारत में आनेवाले तूफानों में कमी हो जाती है इसलिए एल-नीनो वर्ष में भारत में सापेक्षिक सूखे की स्थिति रहती है।

(ii) **दक्षिणी दोलन:** दक्षिणी दोलन मौसम विज्ञान से संबंधित वायुदाब में होने वाला परिवर्तन का प्रतिरूप है, जो हिन्द महासागर और प्रशान्त महासागरों के मध्य प्राय: देखा जाता है। ऐसा देखा गया है कि जब वायुदाब हिन्द महासागर में अधिक होता है, तो प्रशान्त महासागर में यह कम होता है अथवा इन दोनों महासागरों पर वायुदाब की स्थिति एक-दूसरे की उलट होती है। जब वायुदाब प्रशान्त महासागर क्षेत्र पर अधिक होता है तथा हिन्द महासागर पर कम होता है तो भारत में दक्षिण-पश्चिमी मानसून अधिक शाक्तिशाली होता है। इसके विपरीत परिस्थिति में भारत में मानसून कमजोर होने की संभावना अधिक होती है।

पर्यावरणीय भूगोल

प्र. वनोन्मूलन के प्रभावों और कारणों तथा भारत में कृषि के प्रतिरूपों पर इसके प्रभाव की व्याख्या कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांगः वनोन्मूलन के प्रभाव एवं कारण तथा भारत में कृषि के प्रतिरूपों पर इसके प्रभाव की व्याख्या करना है।

उत्तरः वनोन्मूलन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें बहुविध सामाजिक-आर्थिक कारकों एवं आधारणीय रणनीति के कारण वनों की निरंतर कटाई से उनके क्षेत्रफल में तीव्र कमी दर्ज की जाती है। यद्यपि वनों की कटाई मानव सभ्यता के प्रारंभ से ही हो रही है, लेकिन इसका चरित्र धारणीय था तथा प्रकृति द्वारा इस सीमित कटाई की क्षतिपूर्ति कर ली जाती थी, परंतु वर्तमान समय में वनोन्मूलन एवं वनोरोपण की दर में तीव्र अन्तर के कारण अनेक पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न हो गई है।

वन केवल प्राकृतिक संसाधन ही नहीं बल्कि पर्यावरण का बहुत ही महत्वपूर्ण घटक है। पारिस्थितिकी संतुलन बनाए रखने में वनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जनसंख्या में वृद्धि के कारण बढ़ती हुई खाद्य आवश्यकता की पूर्ति हेतु कृषि की भूमिका में विस्तार, भवन निर्माण एवं ईंधन के लिए वनों की कटाई तथा विभिन्न उद्योगों के कच्चे माल की प्राप्ति वनों से ही प्राप्त की जाती है। कई बार कीटों के प्रकोप, कीटनाशकों एवं आग से वन संसाधन का विनाश होता है। पेड़-पौधे की जड़ें वर्षा के जल को सोख लेती हैं जिससे जल का अंतः संरचना (Infiltration) होता है। इससे धरातलीय बहीजल में कमी एवं भूमिगत जल में वृद्धि होती है। इसके परिणामस्वरूप बाढ़ और सूखे का प्रकोप कम हो जाता है। वाष्पोत्सर्जन के कारण वायु में आर्द्रता बढ़ती है और वर्षा में वृद्धि होती है।

वनोन्मूलन (वन-विनाश) से पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव

वन विनाश से पर्यावरण पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। इससे मृदा अपरदन अधिक मात्रा में और अधिक तेजी से होता है। नदियों में जलोढ़ निक्षेप की मात्रा अधिक हो जाती है। बाढ़ एवं सूखे की आवृत्ति एवं तीव्रता में वृद्धि हो जाती है, जिस वजह से भारत में कृषि के प्रतिरूपों पर काफी गहरा प्रभाव पड़ता है।

वायुमंडलीय तापमान एवं आर्द्रता पर नियंत्रण नहीं रहता और जलवायु संबंधी भयानक परिवर्तन होते हैं। वनस्पति मानव जनित कार्बन डाई ऑक्साइड (CO2) का अवशोषण करती है और ऑक्सीजन (O2) छोड़ती है। वनों के विनाश से कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा बढ़ती है और ऑक्सीजन का ह्रास होता है। CO2 में वृद्धि के होने से हरित गृह प्रभाव (Green House Effect) में वृद्धि होती है, जिससे वायुमंडलीय तापमान बढ़ता है। वायुमंडलीय तापमान में वृद्धि होने से हिमनदियां पिघलती है और समुद्रतल ऊंचा उठता है। इससे बहुत से निम्न तटीय भाग समुद्र में डूब जाते हैं। संक्षेप में वन विनाश से पारिस्थितिकी तंत्र पर बहुत ही बुरा असर पड़ता है और उसका संतुलन बिगड़ जाता है।

वन विनाश के कारण

वन विनाश का निम्नलिखित कारण हैं, जो इस प्रकार हैं-

(i) **कृषि भूमि का विस्तारः**

सभ्यता के प्रारंभ से ही कृषि हेतु वनों को साफ किया जा रहा है, लेकिन कम जनदबाव के कारण प्रकृति में संतुलन बना रहा। जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के साथ-साथ खाद्य सुरक्षा हेतु कृषि भूमि का तीव्रतम विस्तार हुआ एवं उसी अनुपातों में वनों का विनाश होता गया साथ ही झूम कृषि पद्धति (स्थान्तरणशील कृषि) के कारण भी काफी बड़े क्षेत्रों में वनों का विनाश हुआ है। वस्तुतः इस पद्धति में एक क्षेत्र विशेष के वनों को जलाकर उसे कृषि भूमि में तब्दील किया जाता है तथा वहां 2 से 3 साल तक या जब तक भूमि की उर्वरता बनी रहती है तब तक कृषि कार्य किया जाता है। फिर इस भूमि को छोड़कर दूसरे क्षेत्र में यही प्रक्रिया अपनायी जाती है। भारत में यह पद्धति आदिवासी समुदायों में नागालैण्ड, मिजोरम, मेघालय, त्रिपुरा, असम आदि पूर्वोत्तर का क्षेत्रों में प्रचलित रही है। वैसे यह कृषि विश्व के अन्य देशों में भी प्रचलित है। जैसे- अफ्रीका के आईवरी कोस्ट में एक दशक (1956-1966) में 40% वनों का विनाश इस कृषि पद्धति के कारण हुआ। भारत में चार दशकों (1950-1990) में लगभग 30 लाख हेक्टेयर भूमि वन विनाश से ग्रस्त हुई।

(ii) **काष्ठ, ईंधन एवं अन्य उपयोग हेतु वन विनाशः**

ईंधन हेतु लकड़ी का प्रयोग लम्बे समय से होता रहा है और इसके लिए वनों की कटाई की जाती रही है और आज भी जारी है। क्योंकि अधिकांश विकासशील देशों के लोग ईंधन हेतु बहुधा लकड़ी पर निर्भर है। हालांकि विकसित देशों में ऊर्जा के अन्य स्रोतों के कारण इस पर अंकुश लगा है। पुनः भवन निर्माण, फर्नीचर बनाने, रेल कोच का निर्माण, जहाज, कागज निर्माण आदि क्षेत्रों में लकड़ी का उपयोग होता है। इसके अलावा कई उद्योगों जैसे रबड़, पेंट, वार्निश, कत्था, प्लाइवुड, कागज, दियासलाई आदि वन पर ही आश्रित है। ये वनोन्मूलन के मुख्य कारण साबित हुए हैं।

(iii) **निर्माण कार्य हेतु वनों का विनाश:**

बढ़ती जनसंख्या दबाव और नगरीकरण के कारण निर्माण कार्यों जैसे सड़क, ओवरब्रिज, रेल लाइन, नदियों पर बांध निर्माण, हवाई अड्डों का विकास बस अड्डों का विकास आदि के कारण बड़े पैमाने पर वनोन्मूलन हुआ है।

(iv) **खनन गतिविधियों द्वारा वनोन्मूलन:**

खनिजों के खनन के व्यापक पैमाने पर वनों का विनाश हुआ है। खुला खनन में जहां बड़ा क्षेत्र वन विहीन हो जाता है, वहीं ड्रिलिंग खनन में वन भूमि को अपेक्षाकृत कम नुकसान होता है, लेकिन इसमें प्रौद्योगिक श्रेष्ठता की जरूरत होती है। विश्व स्तर पर विकासशील देशों में खनन के कारण तीव्रतर वन का विनाश हुआ है। भारत में झारखण्ड, ओडिशा, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश आदि राज्यों में वन क्षेत्र का घटता दायरा इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

(v) **दावानल द्वारा वन विनाश:**

शुष्क मौसम में वृक्षों की डालियों में परस्पर घर्षण, शुष्क उष्ण तेज पवन के कारण पेड़ों में आग लग जाती है। कभी-कभी आकाशीय बिजली से संपर्क, चट्टानों के टूटने एवं उसके घर्षण से उत्पन्न चिंगारी सूखे पत्ते में अग्नि प्रज्जवलित कर देती है तथा वनों में आग लग जाती है। तेज पवन इसे व्यापक क्षेत्र में विस्तृत कर देती है।

(vi) **कीटों के कारण वनों की क्षति:**

कई बार जलवायु संबंधी कारणों से वृक्षों के कीटों द्वारा व्यापक क्षति पहुंचती है। वृक्षों की जड़, तने तथा पत्तियां कीटों के प्रकोप से रोगग्रस्त हो जाती है एवं बड़ी संख्या में सूख जाती है। कृषि उपज में वृद्धि करने के लिए रासायनिक उर्वरक एवं कीटनाशक दवाईयों का अधिकाधिक प्रयोग किया जाता है, जिस कारण मृदा की उर्वरता धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है और वनों का लगना मुश्किल हो जाता है।

(vii) **पशुचारण द्वारा वनों को क्षति:**

इसके कारण व्यापक क्षेत्र घास विहीन हो जाते हैं, जिससे मृदा का अवरोध समाप्त हो जाता है एवं वे अपरदन से ग्रसित होती है और इसका परिणाम वनों की सघनता में कमी के रूप में प्रकट होता है।

(viii) **भूस्खलन एवं हिमस्खलन:**

वैसे क्षेत्र जहां चट्टानी संरचना कमजोर होती है। वायुमंडलीय कारकों के प्रभाव एवं विवर्तनिकी हलचल से चट्टानों में दरार आ जाती है और भू-स्खलन एवं हिमस्खलन की घटनाएं होती है, जिससे उस क्षेत्र के वनों का विनाश हो जाता है।

निष्कर्ष: इस प्रकार स्पष्ट है कि वनोन्मूलन में मानवीय आवश्यकता हेतु वनोत्पाद का दोहन प्रमुख कारण रहा है। सामाजिक-आर्थिक विकास एवं अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि के कारण भूमि उपयोग में परिवर्तन एवं अन्य अप्रत्यक्ष कारणों ने वनोन्मूलन में योगदान दिया है।

प्र. भारत में वन्य पौधों की वृद्धि को कौन से कारक प्रभावित करते हैं? उनके आर्थिक महत्व की विवेचना कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग: भारत में वन्य पौधों की वृद्धि को प्रभावित करने वाले कारक और उसके आर्थिक महत्व की विवेचना करना।

उत्तर: प्राकृतिक रूप से स्वत: ही उगने वाले पेड़-पौधे तथा घास की सघन आकृति को वन कहते हैं।

वन को 'हरा सोना' के नाम से भी संबोधित किया जाता है, प्रकृति की एक मूल्यवान देन है।

शुरू में पृथ्वी के तीन-चौथाई भाग वनों से ढका हुआ था, परंतु मानव ने वन्य उपजों तथा कृषि और चरागाहों के लिए भूमि प्राप्त करने के लिए विस्तृत क्षेत्रों में वनों को काटकर नष्ट कर दिया। जो वर्तमान में लगभग 28% भाग पर वनों का विस्तार है।

भूतल पर वनों का विकास सघनता अथवा उसके प्रकार को कई भौगोलिक कारक प्रभावित करते हैं। प्रमुख परिस्थितिक कारक निम्नलिखित हैं-

(i) **वर्षा:** पौधों का विकास, वृद्धि, सघनता अथवा विरलता काफी हद तक वर्षा पर निर्भर करती है। आधुनिक वर्षा वाले क्षेत्रों में लम्बे-चौड़े पत्ती वाले वृक्ष उगते हैं। जबकि कम वर्षा वाले क्षेत्रों में केवल कांटेदार झाड़ियां तथा घास उगती है।

(ii) **तापमान:** पेड़ों को उगने तथा फलने-फूलने के लिए तापमान की आवश्यकता होती है। सालोंभर तापमान के भूमध्यरेखा पर घने वनों का विकास हो गया एवं ध्रुवीय क्षेत्र तथा उच्च पर्वतीय क्षेत्र जहां तापमान कम और हमेशा बर्फ रहती है, जिस कारण वनरहित क्षेत्र हो गया।

(iii) **सूर्य का प्रकाश:** सूर्य का प्रकाश पेड़ों को बढ़ने में सहायता प्रदान करता है। ऊष्ण गटिबंधीय आर्द्र वन बड़े घने होते हैं और सूर्य की किरणें धरातल तक नहीं पहुंच पाती हैं। सूर्य के प्रकाश से ही पत्तियों का रंग हरा होता है। जब सूर्य प्रकाश पौधों को नहीं मिलता तो पत्ते पीले पड़ जाते हैं।

(iv) **शैल एवं मृदा की प्रकृति:** वनों की शैल मृदा पर बहुत निर्भर करती है। वैसे तो बलुई मिट्टी में भी पेड़ उग आते हैं, परंतु आमतौर पर वे उर्वर मिट्टी में ही फलते-फूलते हैं।

उपर्युक्त कारकों के अतिरिक्त भी कुछ महत्वपूर्ण कारक हैं यथा समुद्र-तल से ऊंचाई, समुद्र से दूरी, ढलान की अभिमुखता एवं पवनों की प्रकृति एवं गति, जो पौधों के विकास को प्रभावित करते हैं।

इसके प्रमुख आर्थिक महत्व हैं जो निम्न हैं-

(i) भोजन, जो आदिम जनजातियों के लिए अधिकतर वनों पर निर्भर करती है।

(ii) वस्त्र, कई पौधों की लकड़ी कृत्रिम रेशे बनाने के काम में आती है। उत्तरी गोलार्द्ध के शीत प्रदेशीय वनों समूहधारी पशु मिलते हैं, जो बहुमूल्य वस्त्र बनाने के काम में आता है।

(iii) वनों से बहुत से उद्योगों के लिए कच्चे माल की प्राप्ति होती है जैसे कागज, दियासलाई, लाह प्लाईवुड, रेशम, खेलों का समान आदि कई उद्योग वनों द्वारा ही प्राप्त होता है।

(iv) वनों से अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियां मिलती है, जिससे विभिन्न प्रकार की औषधियां बनती है।

(v) ईंधन के लिए लकड़ी वनों से ही प्राप्त की जाती है, जो ईंधन का सबसे बड़ा साधन है।

(vi) कई वनों में विस्तृत घास उगती है, जो पशुओं के लिए चारे का काम करती है। कई पशु पेड़-पौधों के पत्ते को खाकर अपना निर्वाह करते हैं।

इस प्रकार वनों से मनुष्य को कई प्रकार के आर्थिक लाभ मिलता है, जो जीवन के लिए कारगर एवं उपयोगी माना जा सकता है।

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा (द्वितीय प्रश्न-पत्र)

मानचित्र आधारित प्रश्न

प्र. ***आपको दिए गए भारत के रेखा मानचित्र पर निम्नलिखित सभी की स्थिति को अंकित कीजिए। अपनी क्यू.सी.ए. पुस्तिका में इन स्थानों में से प्रत्येक का भौतिक/वाणिज्यिक/आर्थिक पारिस्थितिक/पर्यावरणीय/सांस्कृतिक महत्व अधिकतम 30 शब्दों में लिखिए: (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)***

(i) ***वधावन***	(ii) ***सलखन***
(iii) ***कूर्ग***	(iv) ***महू***
(v) ***उमरोई***	(vi) ***तूतूकड़ी***
(vii) ***बारगढ़***	(viii) ***अटल सुरंग***
(ix) ***गुरुशिखर***	(x) ***बुम ला***

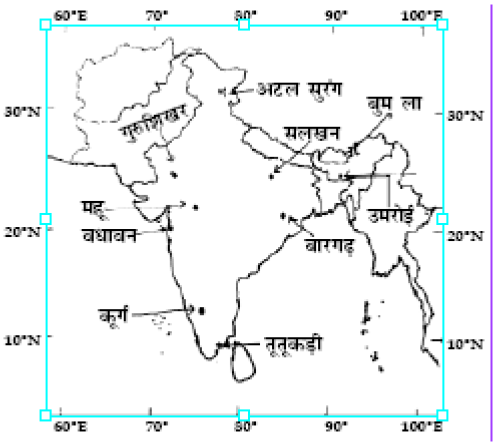

उत्तरः

(i) **वधावनः** महाराष्ट्र के दहलु के पास वधावन बन्दरगाह को 'लैंडलॉर्ड पोर्ट मॉडल' के तहत विकसित करने का प्लान है। स्पेशल पर्पज व्हीकल बन्दरगाह अवसंरचना का विकास करेगा बाकी सभी व्यावसायिक गतिविधियां निजी डेवलपर्स द्वारा पीपीपी मॉडल के तहत की जाएगी।

(ii) **सलखनः** सलखन जीवाश्म पार्क, जिसे सोनभद्र जीवाश्म पार्क के नाम से भी जाना जाता है। यह उत्तर प्रदेश के सोनभद्र जिला में रॉबर्टगंज तहसील से 12 किमी. की दूरी पर सालखन गांव में स्थित है। इस पार्क में पाये गये जीवाश्म शैवाल और स्टॉमैशेलाइट्स जीवाश्म है।

(iii) **कूर्गः** यह भारत के कर्नाटक राज्य का एक जिला है। पश्चिमी घाट पर स्थित पहाड़ों एवं घाटियों का प्रवेश कूर्गए दक्षिण भारत का एक प्रमुख पर्यटक स्थल है। कोडगु के पहाड़, हरे-भरे जंगल, चाय और कॉफी के बगान के लिए प्रसिद्ध है।

(iv) **महूः** मध्य प्रदेश राज्य के इंदौर जिले में स्थित महू एक नगर है जिसका नाम अब डॉ. अम्बेडकर नगर है। यह इंदौर शहर के दक्षिण में 23 किमी. की दूरी पर स्थित है। महू में भारतीय थल सेना की कई इकाइयां हैं। डॉ. भीमराव अम्बेडकर राष्ट्रीय शोध संस्थान भी यहाँ अवस्थित है।

(v) **उमरोईः** यह भारत के पूर्वोत्तर राज्य मेघालय की राजधानी शिलांग शहर से 30 किमी. की दूरी पर री भोई जिले में स्थित है। उमरोई हवाई अड्डा को बड़ापानी विमान क्षेत्र भी कहा जाता है, जो वहां के लोगों को सेवा उपलब्ध कराता है।

(vi) **तूतूकड़ीः** तूतूकड़ी, जो पहले तूतिकोरिन नाम से जाना जाता था। यह भारत के तमिलनाडु राज्य के तूतूकड़ी जिले में स्थित नगर है तथा मुख्यालय भी है।

(vii) **बारगढ़ः** यह ओडिशा राज्य के सबसे पश्चिमी भाग में अवस्थित बारगढ़ जिला है और मुख्यालय भी बारगढ़ ही है। यह 1 अप्रैल, 1993 में सबलपुर जिला से अलग जिला बना था।

(viii) **अटल सुरंगः** यह हिमाचल प्रदेश के लाहौल घाटी में रोहतांग दर्रे के नीचे बनाई गई 9.02 किमी. लम्बी है। इस टनल से पूरे साल मनाली को लाहौल-स्पीति घाटी से जुड़ी रहेगी। यह टनल मनाली और लेह के बीच सड़क दूरी 46 किमी. कम करती है और दोनों स्थानों के बीच लगने वाले समय में लगभग 4 से 5 घंटे की बचत करती है। यह टनल सेमी ट्रांसवर्स वेंटिलेशन सिस्टम, एससीएडीए नियंत्रित अग्निशमन, रोशनी और निगरानी प्रणाली सहित अति-आधुनिक इलेक्ट्रो-मैकेनिकल प्रणाली से युक्त है।

(ix) **गुरुशिखरः** गुरुशिखर, राजस्थान के अरबुदा पहाड़ों में एक चोटी है जो अरावली पर्वतमाला का उच्चतम बिन्दु है। यह 1722 मी. की ऊंचाई पर स्थित है। यह माउण्ट आबू से 15 किमी. दूर स्थित राजस्थान की सबसे ऊंची चोटी है। पर्वत की चोटी पर बने मंदिर सफेद रंग का है। यह मंदिर भगवान विष्णु के अवतार दत्तात्रेय को समर्पित है।

(x) **बुम लाः** बुल ला या बुम दर्रा भारत के अरुणाचल प्रदेश और तिब्बत के बीच हिमालय का एक पहाड़ी दर्रा है, जो अरुणाचल प्रदेश के तवांग शहर से 37 किमी. दूरी पर स्थित है।

प्र. आप को दिए गए भारत के रेखामानचित्र पर निम्नलिखित सभी की स्थिति को अंकित कीजिए। अपनी क्यू.सी.ए. पुस्तिका में इन स्थानों में से प्रत्येक का भौतिक/वाणिज्यिक/आर्थिक/पारिस्थितिक/पर्यावरणीय/सांस्कृतिक महत्त्व अधिकतम 30 शब्दों में लिखिए: *(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2019)*

भारत के साथ अफगानिस्तान, बांग्लादेश, भूटान, नेपाल, म्यांमार (बर्मा), पाकिस्तान और श्रीलंका

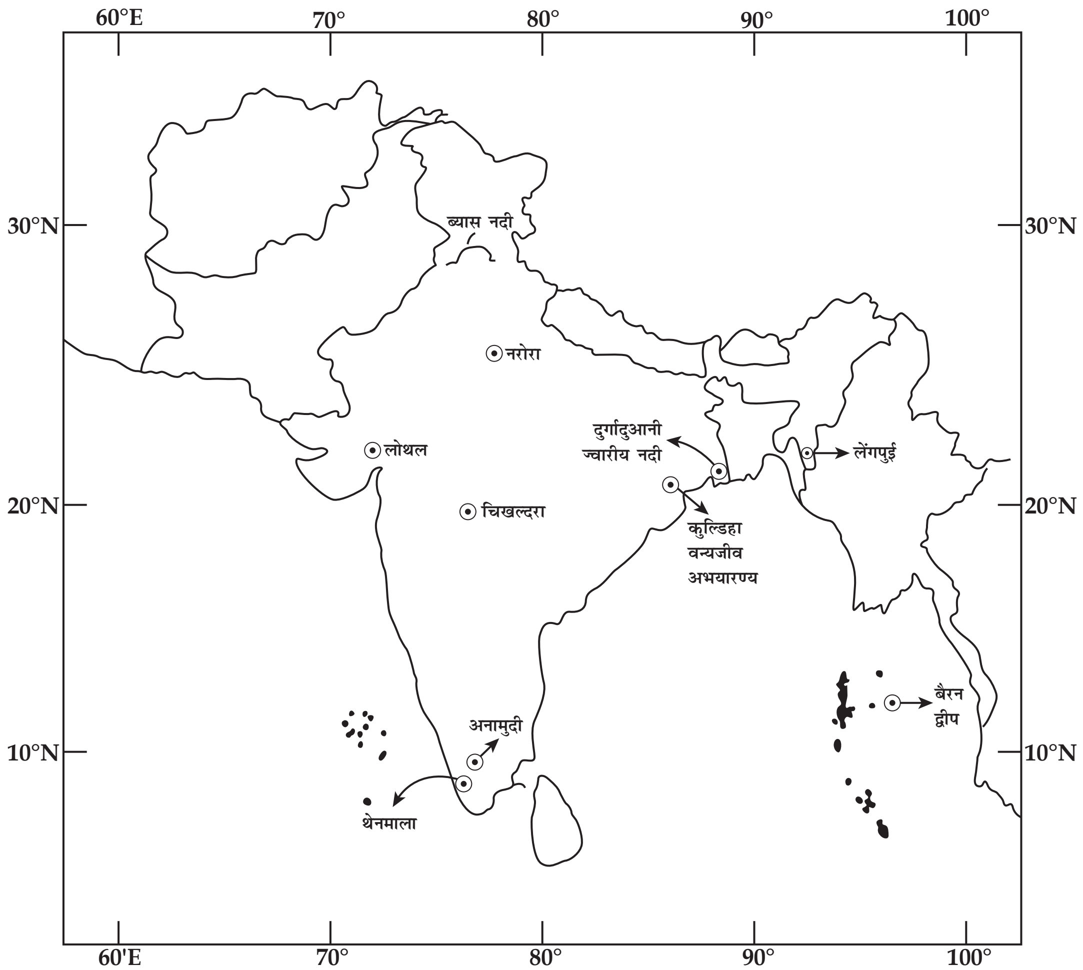

उत्तर:

(i) **लोथल:** यह गुजरात के अहमदाबाद जिले में भोगवा नदी के किनारे अवस्थित है। यह भारत के प्राचीन सिन्धु घाटी सभ्यता के एक महत्वपूर्ण शहर है एवं व्यापार का प्रमुख केन्द्र था जहां मोती, जवाहरात और कीमती गहने पश्चिम एशिया एवं अफ्रीका में भेजे जाते थे।

(ii) **ब्यास नदी:** हिमाचल प्रदेश में 4361 मी. की ऊंचाई पर पंजाब हिमालय के रोहतांग दर्रे से निकलकर दक्षिण दिशा में कुल्लू घाटी होते हुए तथा निकटवर्ती पर्वतों से निकलने वाली सहायक नदियों का जल लेकर यह नदी पश्चिम की ओर मुड़ जाती है और कांगड़ा घाटी में मंडी तक पहुंचती है। इस घाटी को पार करके ब्यास पंजाब राज्य में प्रवेश करती है और पहले दक्षिण और फिर दक्षिण-पश्चिम में बहती हुई हरिके में सतलज नदी में मिल जाती है।

(iii) **चिखल्दरा:** यहां एक वन्यजीव अभयारण्य है, जो महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र के अमरावती जिले में स्थित है। यह विदर्भ क्षेत्र का एकमात्र पर्वतीय नगर है, जहां वन्यजीवों, झीलों, जलप्रपातों एवं दर्शनीय दृश्य उपलब्ध है, अत: यह अपने बिगड़े रूप में 'कीचाकदार' तथा 'चीखाल्दारा' के नाम से जाना जाता है। यह महाराष्ट्र का एकमात्र कॉफी उत्पादक क्षेत्र है। इस वन्यजीव अभयारण्य में तेन्दुआ, रीछ, भालू, सांभर एवं जंगली सुअर पाये जाते हैं।

(iv) **नरोरा:** नरोरा, उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जिले में गंगा नदी के किनारे स्थित एक नगर है, जहां नाभिकीय विद्युत संयंत्र स्थापित है। यह स्वदेशी डिजाइन, उन्नत दबावयुक्त तथा भारी जल पर आधारित 220-220 मेगावाट क्षमता वाले दो रिएक्टर कार्यरत है।

(v) **लेंगपुई:** यह मिजोरम के ममित जिला में अवस्थित है तथा मिजोरम की राजधानी आइजोल से 32 किमी. की दूरी पर स्थित हवाई अड्डा वायु सेवा द्वारा कोलकाता एवं गुवाहाटी से जुड़ा हुआ है। यह पूर्वोत्तर भारत का दूसरा सबसे बड़ा हवाई अड्डा है।

(vi) **कुल्डिहा वन्यजीव अभयारण्य:** यह ओडिशा के बालासोर जिला में स्थित है तथा छोटानागपुर की पठार क्षेत्र के 272.75 किमी. भाग में फैले हुए है। यह वन क्षेत्र अपनी समृद्ध जैव-विविधता के लिए जाना जाता है। यहां हाथी, गौर, तेंदुआ आदि जैसे जीवों के लिए प्रसिद्ध है तथा कुछ दुर्लभ जीवों की प्रजाति एवं वनस्पति पाये जाते है।

(vii) **थेनमाला:** केरल राज्य के कोल्लम जिला में थेनमाला अवस्थित है। यह एक मुख्य पर्यावरण पर्यटन के हॉट स्पॉट के रूप में जाना जाता है।

कृषि

प्र. भारतीय कृषि को नीम लेपित यूरिया योजना से होने वाले लाभों को स्पष्ट कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग: भारतीय कृषि को निम लेपित यूरिया योजना से होने वाले लाभों के संबंध में दर्शाना है।

उत्तर: नीम लेपित यूरिया से अभिप्राय है साधारण यूरिया को नीम के तेल से आवतरित करना। इस यूरिया में ट्राइटर्पीन्स तथा डीनाइट्रीफाइंग तत्वों की अधिकता होती है। नीम लेपित यूरिया के उपयोग से नाइट्रोजन मृदा में धीरे-धीरे समावेशित होती है और यदि किसान साधारण यूरिया का प्रयोग करता है तो उसका अधिकांश भाग पौधों द्वारा उपयोग किये बगैर ही नष्ट हो जाता है। साथ ही मृदा की उर्वरता भी प्रभावित होती है और भूमिगत जल भी अशुद्ध हो जाता है।

यूरिया के जलीयकरण तथा नाइट्रीकरण द्वारा यूरिया की क्षति एक बड़ी समस्या बनकर उभरी। इस समस्या से बचने का सबसे सरल और सफल उपाय है नाइट्रीकरण निरोधी पदार्थ का उपयोग करना। उदाहरण के लिए, नीम लेपित यूरिया।

नीम लेपित यूरिया के प्रयोग से नाइट्रीकरण मंद गति से होने लगता है। नाइट्रोजन का लीचिंग और वाष्पीकरण द्वारा ह्रास कम हो जाता है। नाइट्रोजन अधिक समय तक मृदा में रहती है जिससे पौधे नाइट्रोजन को लम्बे समय तक ग्रहण कर सकते हैं। इससे यूरिया की कम मात्रा से अधिक उत्पादन होगा तथा लागत कम आयेगी। नीम लेपित यूरिया कीटनाशक के रूप में भी कार्य करता है।

नीम लेपित यूरिया से होने वाला लाभ इस प्रकार है-

(i) नीम लेपित यूरिया के प्रयोग से कृषि लागत में कमी आती है।

(ii) इससे किसानों की आय में भी वृद्धि होती है।

(iii) साधारण यूरिया के बजाय इस यूरिया से 5 से 10 प्रतिशत तक कम यूरिया की खपत होती है।

(iv) यह यूरिया 10-15 प्रतिशत तक उपज में वृद्धि करता है।

(v) नाइट्रोजन के धीरे-धीरे निकलने के कारण मृदा उर्वरा को मदद मिलती है।

(vi) यूरिया सब्सिडी की बचत होगी।

(vii) नीम लेपित यूरिया का संतुलित इस्तेमाल यूरिया के औद्योगिक इस्तेमाल पर अंकुश लगेगा, जिससे पर्यावरण अनुकूल होगा।

प्र. नहर सिंचाई ने भारत में एकलसस्यन को जन्म दिया है। उपयुक्त उदाहरणों सहित व्याख्या कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग: किस प्रकार नहर सिंचाई ने भारत में एकलसस्यन को जन्म दिया है, उसका उदाहरण सहित व्याख्या करना है।

उत्तर: भारत के विभिन्न भागों में विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियां पाई जाती है, जिसके परिणामस्वरूप सिंचाई के साधान भी विभिन्न हैं। उदाहरणतया उत्तरी भारत में सिंचाई मुख्यत: नहरों तथा कुंओं से होती है जबकि दक्षिणी भारत में सिंचाई में तालाबों का प्रयोग किया जाता है।

भारत में सिंचाई साधनों में नहरों का महत्वपूर्ण स्थान है। भारत की कुल सिंचित भूमि का लगभग 25 प्रतिशत क्षेत्र नहरों द्वारा सींचा जाता है। नहरों द्वारा सिंचाई मुख्य रूप से जम्मू एवं कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, बिहार, पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों में किया जाता है।

भारत में दो प्रकार की नहरें पाई जाती हैं- नित्यवाही नहरें एवं अनित्यवाही नहरें। भारत की अधिकांश नहरें शुष्क मौसम में सूख जाती है, जिस कारण सिंचित भूमि में केवल एक ही फसल उगाई जाती है। अधिकांश नहरें उत्तर-पश्चिमी भारत की मैदानी भाग में अवस्थित हैं क्योंकि इस क्षेत्र की मृदा कोमल व मुलायम है, जिससे नहरों को खोदना आसान होता है तथा यहां कि नदियों में पानी सालोभर उपलब्ध रहता है जबकि दक्षिणी भारत की नहरें भारत की पठारी भाग में अवस्थित हैं और यहां कि मिट्‌टी कठोर एवं चट्‌टानी हैं जिस कारण नहर खोदना काफी कठिन कार्य है और यहां सिर्फ वर्षा के महीनों में ही नहरों में पानी उपलब्ध रहता है। शुष्क मौसम में यहां की नहरें सुख जाती है।

राजस्थान की इन्दिरा गांधी नहर, चम्बल योजना एवं पार्वती परियोजना से कृषि की सिंचाई की जाती है परंतु यहां वर्षा बहुत कम होती है एवं नदियों का भी अभाव है। इस कारण यहां की नहरों में पानी का अभाव रहता है, जिस कारण साल में सिर्फ एक ही फसल की प्राप्ति की जाती है। इसी प्रकार दक्षिण भारत की लगभग सारी नहरों में सालोभर पानी की उपलब्धता नहीं रहने के कारण वर्ष में सिर्फ एक ही फसल की प्राप्ति की जाती है।

प्र. *आवश्यक वस्तु (संशोधन) बिल 2020 का लक्ष्य कृषि उपजों के उत्पादन, आपूर्ति एवं वितरण को नियंत्रण-मुक्त करना है। इसके क्षेत्रीय परिणामों का समालोचनात्मक परीक्षण कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)*

प्रश्न की मांग: आवश्यक वस्तु (संशोधन) बिल, 2020 के क्षेत्रीय परिणामों का समालोचनात्मक परीक्षण करना है।

उत्तर: आवश्यक वस्तु (संशोधन) बिल, 2020 को राष्ट्रपति द्वारा 26 सितंबर, 2020 को स्वीकृति प्रदान की गई, जिसे 5 जून, 2020 से ही लागू माना जाएगा। इस अधिनियम के माध्यम से अनिवार्य वस्तुएं अधिनियम, 1955 में संशोधन किया गया है। यह अधिनियम केन्द्र सरकार को कुल वस्तुओं के उत्पादन, आपूर्ति, वितरण और वाणिज्य को नियंत्रण करने का अधिकार देता है। इस अधिनियम के प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित है-

(i) इस अधिनियम में यह प्रावधान किया गया है कि केन्द्र सरकार केवल असामान्य परिस्थितियों में ही कुछ खाद्य पदार्थों, जैसे- अनाज, दाल, आलू, प्याज, खाद्य तिलहन और तेलों की आपूर्ति को विनियमित कर सकती है। इन परिस्थितियों में निम्नलिखित शामिल हैं- (i) युद्ध, (ii) अकाल, (iii) असामान्य मूल्य वृद्धि और (iv) गंभीर प्रकृति की प्राकृतिक आपदाएं।

(ii) अधिनियम के अंतर्गत यह उपबंध है कि विशिष्ट वस्तुओं की स्टॉक की सीमा मूल्य वृद्धि पर आधारित होनी चाहिए और इस अधिनियम के तहत किसी कृषि उपज की स्टॉक सीमा को विनियमित करने के लिए एक आदेश केवल तब जारी किया जा सकता है, जब- (a) बागवानी उत्पाद के रीटेल मूल्य में 100 प्रतिशत की वृद्धि होती है, और (b) नष्ट न होने वाले कृषि खाद्य पदार्थों के रीटेल मूल्य में 50 प्रतिशत की वृद्धि होती है। मूल्य में वृद्धि की गणना पिछले 12 महीनों के मूल्य या पिछले 5 वर्ष के औसत रीटेल मूल्य (इनमें से जो भी कम हो) के आधार पर की जाएगी।

(iii) इस अधिनियम में यह प्रावधान है कि कृषि उत्पाद के प्रोसेसर या 'वैल्यू चेन के भागीदार' (Value Chain Participant) व्यक्ति पर स्टॉक की सीमा लागू नहीं होगी, अगर उस व्यक्ति का स्टॉक प्रसंस्करण की स्थापित क्षमता की उच्च सीमा या निर्यातक की स्थिति में निर्यात की मांग कम है।

(iv) अधिनियम के खाद्य पदार्थों के विनियमन और स्टॉक सीमा को लागू करने से संबंधित प्रावधान सार्वजनिक वितरण प्रणाली और लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली से संबंधित सरकारी आदेश पर लागू नहीं होंगे।

कृषि से संबंधित उपर्युक्त अधिनियम को वर्तमान विपणन व्यवस्था में सुधार लाने व किसानों की आय बढ़ाने की दिशा में एक अहम कदम माना जा रहा है। इसके बावजूद इन तीनों अधिनियमों को लेकर कुछ राज्य सरकार व किसानों विशेषकर पंजाब, हरियाणा, पश्चिम उत्तर प्रदेश और केरल के किसानों की कुछ चिंताएं हैं।

केन्द्र सरकार के इस अधिनियम पर आपत्ति जताते हुए पंजाब सरकार ने एक अध्यादेश भी पारित किया है, जो राज्य में न्यूनतम समर्थन मूल्य को जारी रखते हुए इससे कम कीमत पर खरीद को कानून का उल्लंघन मानते हुए सजा का प्रावधान किया गया है। केरल सरकार ने भी कृषि संबंधी अधिनियम को उच्चतम न्यायालय में चुनौती देने की इच्छा जताई है।

नवीन कृषि अधिनियम को लेकर किसानों को कृषि उपज व्यापार एवं वाणिज्य संवर्धन एवं सरलीकरण अधिनियम, 2020 से संबंधित चिंताएं निम्न प्रकार की हैं- पहला, इस अधिनियम को लेकर किसानों की जो सबसे बड़ी चिंता हैं, वह न्यूनतम समर्थन मूल्य को लेकर है। उन्हें लगता है कि भविष्य में यह कानून न्यूनतम समर्थन मूल्य के लिए खतरे की घंटी सिद्ध होगा, इसलिए किसान इस बात की मांग कर रहे हैं कि न्यूनतम समर्थम मूल्य को मंडी के भीतर और इसके बाहर दोनों जगह पर सार्वभौम बनाया जाए, जिससे सरकारी और निजी दोनों तरह के खरीददारों के लिए न्यूनतम मूल्य सीमा के रूप में कार्य करें तथा इसके नीचे खरीद न की जा सके। दूसरा, किसानों को इसकी बड़ी चिंता कृषि उपज विपणन समिति के अंतर्गत स्थापित मंडियों को लेकर है। उन्हें लगता है कि APMC मंडियों के बाहर कर मुक्त निजी व्यापार को प्रोत्साहित करने से ये अधिसूचित बाजार अस्थिर हो जाएंगे, जिससे भविष्य में इन मंडियों की प्रासंगिकता धीरे-धीरे स्वत: समाप्त हो जाएगी। मंडियों के समाप्त होने से सरकारी खरीद में कमी आ सकती है, क्योंकि खुले बाजार की उपलब्धता की वजह से सरकार कृषि उपजों की खरीद में कम रुचि ले सकती है। तीसरा, खुले बाजार में छोटे किसान निजी कम्पनियों के साथ कृषि उपज का मोल-भाव करने में कमजोर सिद्ध होंगे। परिणामस्वरूप उन्हें अपनी उपज कम कीमत पर बेचनी पड़ सकती है। चौथा, इस अधिनियम के लागू होने के बाद किसानों की निर्भरता निजी कंपनियों पर बढ़ जाएगी। पांचवां, ई-नाम जैसे सरकारी ई-ट्रेडिंग पोर्टल का क्या होगा? यह प्रश्न भी इस अधिनियम के लागू होने के बाद अनुतरित प्रतीत हो रहा है।

कृषक (सशक्तीकरण व संरक्षण) कीमत आश्वासन और कृषि सेवा पर करार अधिनियम, 2020 को लेकर किसानों की चिंताएं निम्न प्रकार से हैं- पहला, इस अधिनियम को लेकर किसानों की सबसे बड़ी चिंता यह है कि निजी कंपनियों के साथ अनुबंध कृषि (Contract Farming) संबंधी समझौता करने के दौरान उनका पक्ष कमजोर होगा, परिणामस्वरूप वे अपनी फसल का समुचित मूल्य निर्धारण करने में कमजोर साबित होंगे। दूसरा, यह अधिनियम किसानों को समुचित मूल्य दिलाने का आश्वासन प्रदान करता है, परन्तु मूल्य निर्धारण के लिए समुचित तंत्र का प्रावधान नहीं करता है, जो किसानों की चिंता का प्रमुख कारण है। तीसरा, कृषि विशेषज्ञों के मुताबिक यह अधिनियम किसानों को उनकी उपज बेचने की स्वतंत्रता प्रदान करने के स्थान पर निजी कंपनियों को किसानों की उपज को बिना किसी सरकारी विनियमन और निगरानी के सस्ती कीमत पर खरीदने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। इससे विशेषज्ञों द्वारा इस बात की आशंका व्यक्त की जा रही है कि ऐसी स्थिति में निजी कम्पनियां किसानों का शोषण कर सकती है। चौथा, कृषि विशेषता कृषि क्षेत्र की असंगठित प्रकृति के कारण औपचारिक अनुबंध दायित्वों तथा निजी कंपनियों के विरुद्ध कानूनी विवाद की स्थिति में न्याय के लिए संघर्ष करने हेतु किसानों के पास पर्याप्त संसाधनों की कमी के कारण आशंकित है। पांचवां, किसानों की एक और प्रमुख चिंता यह है कि गैर APMC मंडियों में किसी भी विनिमयन के अभाव में उन्हें निजी कंपनियों से निपटना मुश्किल हो सकता है, क्योंकि वे पूरी तरह से लाभ को मांग के उद्देश्य से काम करते हैं। अनिवार्य वस्तुएं (संशोधन) अधि नियम, 2020 को लेकर किसानों की चिंताएं निम्नलिखित है- पहला, इस अधिनियम के अंतर्गत अनाज, दाल, आलू, प्याज, खाद्य तिलहन व तेल को आवश्यक वस्तु की सूची से हटा दिया गया है।